आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की
पं.टोडरमलजी कृत भाषाटीका

# सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

## (जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि)

का

हिन्दी अनुवाद

**भाग २**


– अनुवादिका –

**डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा**

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

– सम्पादक –

**पं. दिनेशभाई शहा**

एम.ए., एल.एल.बी.



– प्रकाशक –

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई ४०००२२

टेलि. : ०२२–२४०७३५८१

**सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका–जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि**

हिन्दी टीका

| | | |
|---|---|---|
| तृतीय संस्करण | ८ मार्च २०१८ | १००० प्रत |
| दो संस्करण | | २६०० प्रत |
| | | योग ३६०० प्रत |

**– प्राप्तिस्थान –**

**अमित जैन**

द्वारा डीटीडीसी कुरियर अँड कार्गो लिमिटेड

३३१२ लाल गल्ली, दिल्ली गेट,

दरियागंज, दिल्ली ११०००२

टेलि. : ९८११३९३३५६/९८९९५५४१६९

**वीतरागवाणीप्रकाशक**

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई ४०००२२

टेलि. : ०२२–२४०७३५८१

Email - ujwaladinesh@yahoo.com

**मूल्य रु. १५0 (भाग १ और २)**

# विषय–सूची


**तेरहवां अधिकार :**
**संयममार्गणा प्ररूपणा ५६१–५६८**

संयम का स्वरूप और उसके पांच भेद,
संयम की उत्पत्ति का कारण .................... ५६१

देशसंयम और असंयम का कारण,
सामायिकादि पांच संयम का स्वरूप ........... ५६३

देशविरत, इन्द्रियों के अट्ठाइस विषय,
संयम की अपेक्षा जीवसंख्या .................. ५६७

**चौदहवां अधिकार :**
**दर्शनमार्गणा प्ररूपणा ५६९–५७२**

दर्शन का लक्षण, चक्षुदर्शन आदि
चार भेदों का क्रम से स्वरूप,
दर्शन की अपेक्षा जीवसंख्या.................... ५६९

**पंद्रहवां अधिकार :**
**लेश्यामार्गणा प्ररूपणा ५७३–६३४**

लेश्या का लक्षण, लेश्याओं के निर्देश
आदि सोलह अधिकार......................... ५७३

निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म,
लक्षण, गति, स्वामी, साधन, अपेक्षा
लेश्या का कथन .............................. ५७४

संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर,
भाव और अल्पबहुत्व अपेक्षा
लेश्या का कथन .............................. ५९९

लेश्यारहित जीव .............................. ६३४

**सोलहवां अधिकार :**
**भव्यमार्गणा प्ररूपणा ६३५–६५१**

भव्य–अभव्य का स्वरूप,
भव्यत्व–अभव्यत्व से रहित जीव,
भव्य मार्गणा में जीवसंख्या .................... ६३५

पांच परिवर्तन ................................. ६३६

**सत्रहवां अधिकार :**
**सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा ६५२–७१८**

सम्यक्त्व का स्वरूप, सात अधिकारों
के द्वारा छह द्रव्यों के निरूपण का निर्देश........ ६५२

नाम, उपलक्षण, स्थिति, क्षेत्र, संख्या,
स्थानरूप, फलाधिकार द्वारा छह द्रव्यों
का निरूपण .................................. ६५३

पंचास्तिकाय, नव पदार्थ,
गुणस्थानक्रम से जीवसंख्या,
त्रैराशिक यंत्र ................................. ६९७

क्षपकादि की युगपत् संभव विशेष संख्या,
सर्व संयमियों की संख्या,
क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व,
उपशम सम्यक्त्व ............................. ७०३

पांच लब्धि, सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य
जीव, सम्यक्त्वमार्गणा के दूसरे भेद,
सम्यक्त्वमार्गणा में जीवसंख्या................. ७१४

**अठारहवां अधिकार :**
**संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा ७१९–७२०**

संज्ञी, असंज्ञी का स्वरूप, संज्ञी,
असंज्ञी की परीक्षा के चिह्न .................... ७१९

संज्ञी मार्गणा में जीवसंख्या .................... ७२०

**उन्नीसवां अधिकार :**
**आहारमार्गणा प्ररूपणा ७२१–७२५**

आहार का स्वरूप,
आहारक, अनाहारक भेद,
समुद्घात के भेद, समुद्घात का स्वरूप ........ ७२१
आहारक और अनाहारक का काल,
प्रमाण, आहारमार्गणा में जीवसंख्या ........... ७२३

**बीसवां अधिकार :**
**उपयोग प्ररूपणा** **७२६–७२८**

उपयोग का स्वरूप, भेद तथा
उत्तर भेद, साकार अनाकार उपयोग
की विशेषता, उपयोगाधिकार
में जीवसंख्या .................................. ७२६

**इक्कीसवां अधिकार :**
**अंतरभावाधिकार** **७२९–७४७**

गुणस्थान और मार्गणा में शेष
प्ररूपणाओं का अन्तर्भाव, मार्गणाओं
में जीवसमासादि ............................... ७२९
गुणस्थानों में जीवसमासादि ................... ७३७
मार्गणाओं में जीवसमास ....................... ७३८

**बाइसवां अधिकार :**
**आलापाधिकार** **७४८–७६५**

नमस्कार और आलापाधिकार के
कहने की प्रतिज्ञा .............................. ७४८
गुणस्थान और मार्गणाओं के
आलापों की संख्या, गुणस्थानों में
आलाप, जीवसमास की विशेषता,
बीस भेदों की योजना, आवश्यक नियम ........ ७४८
यंत्ररचना ...................................... ७६४

गुणस्थानातीत सिद्धों का स्वरूप,
बीस भेदों को जानने का उपाय ................. ८५२
अंतिम आशीर्वाद ............................... ८५३

– ० –

अर्थसंदृष्टि संबंधी प्रकरण ..................... ८५५

**अर्थसंदृष्टि अधिकार** **८५७–१०४३**

सामान्य स्वरूप ................................ ८५७
गुणस्थानाधिकार .............................. ८७८
जीवसमास अधिकार ........................... ९०९
पर्याप्ति अधिकार .............................. ९१९
प्राण, संज्ञा, गतिमार्गणा अधिकार ............. ९२७
इन्द्रियमार्गणा अधिकार ....................... ९३१
कायमार्गणा अधिकार .......................... ९३७
योगमार्गणा अधिकार .......................... ९४३
वेदमार्गणा अधिकार ........................... ९७७
कषायमार्गणा अधिकार ........................ ९८०
ज्ञानमार्गणा अधिकार .......................... ९८५
संयममार्गणा अधिकार ........................१००७
दर्शन, लेश्यामार्गणा अधिकार .................१००८
भव्यमार्गणा अधिकार .........................१०२५
सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार ....................१०२७
संज्ञीमार्गणा अधिकार .........................१०४१
आहारमार्गणा, उपयोग अधिकार .............१०४२
संस्कृत, भाषा टीकाकार के वचन ............१०४४

– ० –

# तेरहवां अधिकार : संयममार्गणा प्ररूपणा

**।। मंगलाचरण ।।**

**विमल करत निज गुणनि तैं सब कौं विमल जिनेश ।**
**विमल हौंन कौं मैं नमौं अतिशय जुत तीर्थेश ।।**

ज्ञानमार्गणा का प्ररूपण करके अब संयममार्गणा कहते हैं –

**वदसमिदिकसायाणं दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं ।**
**धारणपालण णिग्गहचागजओ संजमो भणियो ।।४६५।।**

**व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानाम् ।**
**धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ।।४६५।।**

**टीका** – अहिंसा आदि व्रतों का धारण करना, ईर्या आदि समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियों का जीतना ऐसे इन व्रतादिक पांच का धारणादि करना वही पांच प्रकार का संयम जानना । **सं** अर्थात् सम्यक् प्रकार का जो **यम** अर्थात् नियम, वह संयम है ।

**बादरसंजलणुदये सुहुमुदये, समखये य मोहस्स ।**
**संजमभावो णियमा होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६६।।**

**बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।**
**संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६६।।**

**टीका** – बादर संज्वलन का उदय होते हुये तथा सूक्ष्म लोभ का उदय होते हुये तथा मोहनीय का उपशम होते हुये तथा मोहनीय का क्षय होते हुये निश्चय से संयमभाव होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

वहां प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानों में संज्वलन कषायों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं है वह तो क्षय, पुनश्च उदयरूप निषेकों के ऊपरवर्ती निषेकों का उदय नहीं है वही उपशम तथा बादर संज्वलन के देशघाति स्पर्धक जो संयम के अविरोधी हैं

उनका उदय, ऐसा क्षयोपशम होनेपर सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं ।

पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्तिकरण, वहां तक बादर संज्वलन के उदय से अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में सामायिक और छेदोपस्थापना दो ही संयम होते हैं । पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुआ ऐसा जो संज्वलन लोभ उसके उदय से दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्परायसंयम होता है ।

पुनश्च सर्व चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से तथा क्षय से यथाख्यातसंयम होता है । वहां ग्यारहवें गुणस्थान में उपशम यथाख्यात होता है । बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में क्षायिक यथाख्यात होता है ।

इसी अर्थ को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं ।

**बादरसंजलणुदये बादरसंजमतियं खु परिहारो ।**
**पमदिदरे सुहुमुदये सुहुमो संजमगुणो होदि ।।४६७।।**

**बादरसंज्वलनोदये बादरसंयमत्रिकं खलु परिहारः ।**
**प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ।।४६७।।**

**टीका** - बादर संज्वलन के देशघाति स्पर्धक संयम के विरोधी नहीं हैं, उनके उदय से सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं । वहां परिहारविशुद्धिसंयम तो प्रमत्त-अप्रमत्त दो गुणस्थानों में ही होता है और सामायिक, छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण तक चार गुणस्थानों में होता है । पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुये संज्वलन लोभ के उदय से सूक्ष्मसाम्पराय नामक संयमगुण होता है ।

**जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।**
**खयदो वि य सो णियमा होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६८।।**

**यथाख्यातसंयमः पुनः उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।**
**क्षयतोऽपि च स नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६८।।**

**टीका** - यथाख्यातसंयम है, वह निश्चय से मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम से वा क्षय से होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

**तदियकषायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।**
**बिदियकषायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ।।४६९।।**

**तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।**
**द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ।।४६९।।**

**टीका** – तीसरे प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से युगपत् विरत-अविरतरूप संयमासंयम होता है । जैसे तीसरे गुणस्थान में सम्यक्त्व-मिथ्यात्व मिलकर ही होते हैं, वैसे पंचम गुणस्थान में संयम-असंयम दोनों मिश्ररूप होते हैं । इसलिये यह मिश्र संयमी है । पुनश्च दूसरे अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से असंयम होता है । ऐसे संयममार्गणा के सात भेद कहे ।

**संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।**
**जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजमो होदि ।।४७०।।**

**संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यम् ।**
**जीवः समुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ।।४७०।।**

**टीका** – समस्त व्रतधारणादिक पांच प्रकार के संयम को संग्रह द्वारा **एकयमं** अर्थात् मैं सर्व सावद्य का त्यागी हूँ ऐसा **एकयमं** अर्थात् सकल सावद्य के त्यागरूप अभेद संयम, वही सामायिक जानना ।

कैसा है सामायिक ? **अनुत्तरं** अर्थात् जिसके समान अन्य नहीं है, सम्पूर्ण है । **दुरवगम्यं** अर्थात् दुर्लभपने पाया जाता है, ऐसे सामायिक को पालनेवाला जीव सामायिकसंयमी है ।

**छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।**
**पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ।।४७१।।**

**छित्वा च पर्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानम् ।**
**पंचयमे धर्मे स छेदोपस्थापको जीवः ।।४७१।।**

**टीका** – सामायिक चारित्र का धारक, प्रमाद से स्खलित होकर सावद्य क्रिया को प्राप्त हुआ ऐसा जो जीव, पहले हुयी सावद्यरूप पर्याय का प्रायश्चित्त विधि से

छेदन करके अपनी आत्मा को व्रतधारण आदि पांच प्रकार के संयमरूप धर्म में स्थापन करता है, वही छेदोपस्थापनसंयमी जानना ।

छेद अर्थात् प्रायश्चित्त, उसके द्वारा उपस्थापन अर्थात् धर्म में आत्मा को स्थापित करना, वह जिसके होता है वह छेदोपस्थापनसंयमी है । अथवा पहले जो तप किया था उसका दोष के अनुसार विच्छेद हुआ उसका छेद अर्थात् अपना दोष दूर करने के लिये तप के द्वारा उपस्थापन अर्थात् निर्दोष संयम में आत्मा को स्थापित करना, वह जिसके होता है, वह छेदोपस्थापनसंयमी है ।

अपने तप के छेद का होता है उपस्थापन जिसके, वह छेदोपस्थापन है, ऐसी निरुक्ति जाननी ।

**पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं ।**
**पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ।।४७२।।**

**पंचसमितः त्रिगुप्तः परिहरति सदापि यो हि सावद्यम् ।**
**पंचैकयमः पुरुषः परिहारकसंयतः स हि ।।४७२।।**

**टीका** – पांच समिति, तीन गुप्ति से संयुक्त जो जीव, सदा काल हिंसारूप सावद्य का परिहार करता है, वह पुरुष सामायिकादि पांच संयमों में से परिहारविशुद्धि नामक संयम का धारक प्रकट जानना ।

**तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।**
**पंचक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ।।४७३।।**

**त्रिंशद्वर्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थंकरमूले ।**
**प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ।।४७३।।**

**टीका** – जो जन्म से तीस वर्ष तक का हो तथा सर्वदा खानपान आदि से सुखी हो, ऐसा पुरुष दीक्षा को अंगीकार करके पृथक्त्व वर्ष तक तीर्थंकर के पादमूल में प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व का पाठी हो, वह परिहारविशुद्धिसंयम को अंगीकार करके तीनों संध्या काल बिना सर्व काल में दो कोस विहार करता है और रात्रि में विहार न करे, वर्षा काल में कुछ नियम नहीं, गमन करे वा न करे, ऐसा परिहारविशुद्धिसंयमी होता है ।

**परिहार** अर्थात् प्राणियों की हिंसा का त्याग, उससे विशेषरूप जो **शुद्धिः** अर्थात् शुद्धता जिसमें हो, वह परिहारविशुद्धिसंयम जानना ।

इस संयम का जघन्य काल तो अंतर्मुहूर्त है क्योंकि कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र उस संयम को धारण करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त होता है तो वहां वह संयम नहीं रहता, इसलिये जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कहा ।

पुनश्च उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम पूर्व कोटि है । क्योंकि कोई कोटि पूर्व आयु का धारी जीव तीस वर्ष का होकर दीक्षा ग्रहण करके आठ वर्ष तक तीर्थंकर के निकट पढ़कर पश्चात् परिहारविशुद्धिसंयम को अंगीकार करता है इसलिये उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम पूर्व कोटि कहा ।

कहा ही है –

**परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन् ।**
**पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ।।**

**इसका अर्थ –** परिहारविशुद्धि ऋद्धि से युक्त जीव छह कायरूप जीवों के समूह में विहार करते हुये जल से कमलपत्र की भांति पाप से लिप्त नहीं होता ।

**अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।**
**सो सुहुमसंपराओ जइखादेणूणओ किंचि ।।४७४।।**

**अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा ।**
**स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित् ।।४७४।।**

**टीका –** सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुये लोभ कषाय के अनुभाग के उदय को भोगनेवाले उपशमक या क्षपक जीव, सूक्ष्म है साम्पराय अर्थात् कषाय जिनके, ऐसे सूक्ष्मसाम्परायसंयमी जानना । ये यथाख्यातसंयमी महामुनियों से किंचित् कम जानना, अल्पसा ही अंतर है ।

**उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।**
**छदुमट्ठो वा जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ।।४७५।।**

**उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये ।**
**छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातः संयतः स तु ।।४७५।।**

**टीका** – अशुभरूप मोहनीय कर्म उपशमरूप या क्षयरूप होनेपर उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती या क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होते हैं अथवा सयोगी, अयोगी जिन हैं वे ही यथाख्यातसंयमी जानना । मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम या नाश से यथावस्थित आत्मस्वभाव की अवस्था ही है लक्षण जिसका ऐसा यथाख्यातचारित्र है ।

**पंचतिहिंचउविहेहिं य अणुगुणसिक्खावणेहिं संजुत्ता।**
**उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ।।४७६।।**

**पंचत्रिचतुर्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः ।**
**उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ।।४७६।।**

**टीका** – पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतों से संयुक्त जो सम्यग्दृष्टि, कर्मनिर्जरा के धारक देशविरत जीव संयमासंयम के धारक हैं ऐसा परमागम में कहा है ।

**दंसणवयसामाइय पोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।**
**बह्मारंभपरिग्गह अणमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे ।।४७७।।**

**दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रभक्ताश्च ।**
**ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ।।४७७।।**

**टीका** – नाम के एकदेश से पूरा नाम ग्रहण करना इस न्याय से इस गाथा का अर्थ करते हैं । १) दार्शनिक, २) व्रतिक, ३) सामायिक, ४) प्रोषधोपवास, ५) सचित्तविरत, ६) रात्रिभोजनविरत, ७) ब्रह्मचारी, ८) आरंभविरत, ९) परिग्रहविरत, १०) अनुमतिविरत, ११) उद्दिष्टविरत ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं की अपेक्षा से देशविरत के ग्यारह भेद जानने ।

वहां पांच उदुंबरादिक और सप्त व्यसनों का त्याग करे और शुद्ध सम्यक्त्वी हो जाय, उसे दार्शनिक कहते हैं । पांच अणुव्रतादि को धारण करे, उसे व्रतिक कहते हैं । नित्य सामायिक क्रिया जिसके होती है, उसे सामायिक कहते हैं । अवश्य पर्वों

में जिसके उपवास होते हैं, उसे प्रोषधोपवास कहते हैं । जीव सहित वस्तु के सेवन का त्यागी हो, उसे सचित्तविरत कहते हैं । रात्रि में भोजन न करे, उसे रात्रिभक्तविरत कहते हैं । सदा काल शील पाले, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं । पाप आरंभ का त्याग करे, उसे आरंभविरत कहते हैं । परिग्रह के कार्य का त्याग करे, उसे परिग्रहविरत कहते हैं । पाप की अनुमोदना का त्याग करे, उसे अनुमतिविरत कहते हैं । अपने निमित्त से बने हुये आहारादिक का त्याग करे, उसे उद्दिष्टविरत कहते हैं । इनका विशेष वर्णन अन्य ग्रंथों से जानना ।

**जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु ।**
**जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेदव्वा ।।४७८।।**

**जीवश्चतुर्दशभेदा इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु ।**
**ये तेषु नैव विरता असंयताः ते मंतव्याः ।।४७८।।**

**टीका** – चौदह जीवसमासरूप भेद तथा अट्ठाइस इन्द्रियों के विषय, इनसे जो विरत नहीं होते अर्थात् जीवों की दया नहीं पालते और विषयों में रागी हैं वे असंयमी जानना ।

**पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा ।**
**मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ।।४७९।।**

**पंचरसपंचवर्णाः द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः ।**
**मनःसहिताःअष्टविंशतिः इंद्रियविषयाः मंतव्याः ।।४७९।।**

**टीका** – तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा ये पांच रस; सफेद, पीला, नीला, लाल, काला ये पांच वर्ण; सुगंध, दुर्गंध ये दो गंध; कोमल, कठोर, भारी, हलका, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना ये आठ स्पर्श; षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सात स्वर ऐसे इन्द्रियों के सत्ताइस विषय और अनेक विकल्परूप एक मन का विषय, ऐसे विषय के भेद अट्ठाइस जानने ।

आगे संयममार्गणा में जीवों की संख्या कहते हैं –

**पमदादिचउण्हं जुदी सामयियदुगं कमेण सेसतियं ।**
**सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहिं परिहीणा ।।४८०।।**

**प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकम् ।**
**सप्तसहस्राणि नवशतानि नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ।।४८०।।**

**टीका** – प्रमत्तादि चार गुणस्थानवर्ती जीवों का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतने जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयम के धारक जानना । वहां प्रमत्तवाले पांच कोडि तिरानबे लाख अट्ठानबे हजार दो सौ छह (५९३९८२०६), अप्रमत्तवाले दो कोडि छानबे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३), अपूर्वकरणवाले उपशमक दो सौ निन्यानबे (२९९), क्षपक पांच सौ अट्ठानबे (५९८), अनिवृत्तिकरणवाले उपशमक दो सौ निन्यानबे (२९९) क्षपक पांच सौ अट्ठानबे (५९८) इन सब का जोड़ देनेपर आठ कोडि नब्बे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (८९०९९१०३) हुये । इतने जीव सामायिकसंयमी जानने । तथा इतने ही जीव छेदोपस्थापनासंयमी जानने । पुनश्च अवशेष तीन संयमी रहे वहां परिहारविशुद्धिसंयमी तीन कम सात हजार (६९९७) जानने । सूक्ष्मसाम्परायसंयमी तीन कम नौ सौ (८९७) जानने । यथाख्यातसंयमी तीन कम नौ लाख (८९९९९७) जानने ।

**पल्लासंखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं ।**
**पुव्वुत्तरासिहीणा संसारी अविरदाण पमा ।।४८१।।**

**पल्यासंख्येयं विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणम्।**
**पूर्वोक्तराशिहीनाः संसारिणः अविरतानां प्रमा ।।४८१।।**

**टीका** – पल्य के असंख्यात भाग कीजिये उसमें एक भाग प्रमाण संयमासंयम के धारक जीवद्रव्यों का प्रमाण है । पुनश्च संसारी जीवों के प्रमाण में से ऊपर कहे हुये छह संयम के धारक जीवों का प्रमाण घटानेपर जो अवशेष रहे, वही असंयमी जीवों का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक इस भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से संयममार्गणा प्ररूपणा नामक तेरहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१३।।

# चौदहवां अधिकार : दर्शनमार्गणा प्ररूपणा

**।। मंगलाचरण ।।**

**इस अनन्त भव उदधितैं पार करनकौं सेतु ।**
**श्री अनंत जिनपति नमौं सुख अनन्त के हेतु ।।**

आगे दर्शनमार्गणा को कहते हैं –

**जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।**
**अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समये ।।४८२।।**

**यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वाकारम् ।**
**अविशेष्यार्थान् दर्शनमिति भण्यते समये ।।४८२।।**

**टीका** – भाव जो सामान्यविशेषात्मक पदार्थ उनके आकार अर्थात् भेद का ग्रहण, उसको **नैवकृत्वा** अर्थात् न करके **यत् सामान्यं ग्रहणं** अर्थात् जो सत्तामात्र स्वरूप का प्रतिभासना, **तत् दर्शनं** अर्थात् वही दर्शन परमागम में कहा है । कैसे ग्रहण करता है? **अर्थान् अविशेष्य** अर्थात् अर्थ जो बाह्य पदार्थ उनको अविशेष्य अर्थात् जाति, क्रिया, गुण, प्रकार इत्यादि विशेष न करते हुये, अपना और अन्य का केवल सामान्यरूप सत्तामात्र ग्रहण करता है ।

इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं –

**भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।**
**वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ।।४८३।।**

**भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।**
**वर्णनहीनग्रहणं जीवेन च दर्शनं भवति ।।४८३।।**

**टीका** – सामान्यविशेषात्मक जो पदार्थ उनका स्वरूपमात्र भेद रहित जैसे हैं वैसे, जीव सहित स्वपर सत्ता का प्रकाशना, वह दर्शन है । जो देखे तथा जिसके द्वारा देखे तथा देखनेमात्र, उसे दर्शन जानना ।

आगे चक्षु-अचक्षुदर्शन के लक्षण कहते हैं -

**चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं बेंति ।**
**सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खू त्ति ।।४८४।।**

**चक्षुषोः यत्प्रकाशते पश्यति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।**
**शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ।।४८४।।**

**टीका** - नेत्रों संबंधी जो सामान्यग्रहण उसे जो प्रकाशता है, देखता है जिसके द्वारा या उस नेत्र के विषय का प्रकाशन उसे गणधरादिक चक्षुदर्शन कहते हैं । पुनश्च नेत्र बिना चार इन्द्रिय और मन के विषय का जो प्रकाशन, वह अचक्षुदर्शन है ऐसा जानना ।

**परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं ।**
**तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ।।४८५।।**

**परमाण्वादीनि अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।**
**तदवधिदर्शनं पुनः यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षम् ।।४८५।।**

**टीका** - परमाणु से लेकर महास्कंध तक जो मूर्तिक द्रव्य उनको जो प्रत्यक्ष देखता है, वह अवधिदर्शन है ।

**बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।**
**लोगालोग वितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ।।४८६।।**

**बहुविधबहुप्रकारो उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।**
**लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ।।४८६।।**

**टीका** - चन्द्रमा, सूर्य, रत्नादिक संबंधी बहुत भेदों से युक्त बहुत प्रकार के उद्योत जगत में हैं । वे परिमित यानि मर्यादा सहित क्षेत्र में ही अपना प्रकाश करने को समर्थ हैं । इसलिये उन प्रकाशों की उपमा देने योग्य नहीं ऐसा समस्त लोक और अलोक में अंधकार रहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामक उद्योत जानना ।

आगे दर्शनमार्गणा में जीवों की संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं -

**जोगे चउरक्खाणं पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं ।**
**चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ।।४८७।।**

**योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणाम् ।**
**चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ।।४८७।।**

**टीका –** मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान तक चक्षुदर्शन ही है । उनके दो भेद हैं – एक शक्तिरूप चक्षुदर्शनी, एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी । वहां लब्धिअपर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तो शक्तिरूप चक्षुदर्शनी हैं, क्योंकि नेत्रइन्द्रियपर्याप्ति की पूर्णता अपर्याप्त अवस्था में नहीं है । इसलिये वहां प्रकटरूप चक्षुदर्शन नहीं प्रवर्तता है । पुनश्च पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है; क्योंकि वहां प्रकटरूप चक्षुदर्शन है । वहां द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आवली के असंख्यातवें भाग का भाग प्रतरांगुल को देनेपर जो प्रमाण आता है उसका भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं, तो चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कितने हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि चार, फलराशि त्रसों का प्रमाण, इच्छाराशि दो; वहां इच्छाराशि को फलराशि से गुणा करके प्रमाण का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, उतनी चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय राशि है । वहां द्वीन्द्रिय आदि क्रम से घटते हैं । इसलिये किंचित् कम करके पुनश्च उसमें से पर्याप्त जीवों का प्रमाण घटाना । इसलिये उस प्रमाण में से भी कुछ घटानेपर जो प्रमाण हो उतने शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने । पुनश्च ऐसे ही त्रस पर्याप्त जीवों के प्रमाण को चार का भाग देकर, दोगुणा करके, उसमें से कुछ कम करनेपर जो प्रमाण हो उतने व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी हैं । इन्द्रियमार्गणा में जो चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण कहा है, उनको मिलानेपर चक्षुदर्शनी जीवों का प्रमाण होता है ।

अवधिदर्शनी जीवों का प्रमाण अवधिज्ञानी जीवों के प्रमाण के समान जानना।

पुनश्च केवलदर्शनी जीवों का प्रमाण केवलज्ञानी जीवों के प्रमाण के समान जानना। इनका प्रमाण ज्ञानमार्गणा में कहा है ।

**एइंदियपहुदीणं खीणकसायंतणंतरासीणं ।**
**जोगो अचक्खुदंसणजीवाणां होदि परिमाणं ।।४८८।।**

**एकेंद्रियप्रभृतिनां क्षीणकषायांतानंतराशीनाम् ।**
**योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणम् ।।४८८।।**

**टीका –** एकेन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तक अनंत जीवों का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतना अचक्षुदर्शनी जीवों का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से दर्शनमार्गणा प्ररूपणा नामक चौदहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१४।।

# पंद्रहवां अधिकार : लेश्यामार्गणा प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

**सुधाधार सम धर्म तैं पोषे भव्य सुधान्य ।**
**प्राप्त कीए निज इष्ट कौं भजौं धर्म धन मान्य ।।**

आगे लेश्यामार्गणा कहना चाहते हैं । वहां प्रथम ही निरुक्ति सहित लेश्या का लक्षण कहते हैं -

**लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च ।**
**जीवो त्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ।।४८९।।**

**लिंपत्यात्मीकरोति एतया निजापुण्यपुण्यं च ।**
**जीव इति भवति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ।।४८९।।**

**टीका** - लेश्या दो प्रकार की है - एक द्रव्यलेश्या, एक भावलेश्या । वहां इस सूत्र में भावलेश्या का लक्षण कहा है । **लिंपति एतया इति लेश्या** जीव नामक पदार्थ इसके द्वारा पाप और पुण्य को लिप्त करता है, अपना करता है, निज संबंधी करता है वह लेश्या है, ऐसा लेश्या के लक्षण को जाननेवाले गणधरादिकों ने कहा है । जिसके द्वारा आत्मा कर्म से आत्मा को लिप्त करता है वह लेश्या है अथवा कषायों के उदय से अनुरंजित जो योगों की प्रवृत्ति है, वह लेश्या है ।

इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं -

**जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होई ।**
**तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ।।४९०।।**

**योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।**
**ततो द्वयोः कार्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टम् ।।४९०।।**

**टीका** - मन, वचन, कायरूप योगों की प्रवृत्ति वह लेश्या है । योगों की प्रवृत्ति कषायों के उदय से अनुरंजित होती है । इसलिये योग और कषाय इन दोनों का कार्य चार प्रकार का बंध कहा है । योगों से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध कहा

है । कषायों से स्थितिबंध और अनुभागबंध कहा है । उसी कारण कषायों के उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति ही है लक्षण जिसका ऐसे लेश्या से चार प्रकार का बंध युक्त ही है ।

आगे दो गाथाओं द्वारा लेश्या के प्ररूपण में सोलह अधिकार कहते हैं -

**णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।**
**सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ।।४९१।।**

**अंतरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंति त्ति ।**
**लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि ।।४९२।।जुम्मम्।**

**निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्मलक्षणगतयश्च ।**
**स्वामी साधनसंख्या क्षेत्रं स्पर्शं ततः कालः ।।४९१।।**

**अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति ।**
**लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ।।४९२।।युग्मम्।।**

**टीका** - १) निर्देश, २) वर्ण, ३) परिणाम, ४) संक्रम, ५) कर्म, ६) लक्षण, ७) गति, ८) स्वामी, ९) साधन, १०) संख्या, ११) क्षेत्र, १२) स्पर्शन, १३) काल, १४) अंतर, १५) भाव, १६) अल्पबहुत्व ये सोलह अधिकार लेश्या के भेदसाधन के निमित्त हैं । उनके द्वारा अनुक्रम से लेश्यामार्गणा को कहते हैं।

*१) निर्देश अधिकार -*

**किण्हा णीला काउ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।**
**लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ।।४९३।।**

**कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।**
**लेश्यानां निर्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ।।४९३।।**

**टीका** - नाम मात्र कथन करना निर्देश है । लेश्या के ये छह नाम हैं - कृष्ण, नील, कपोत(कापोत), पीत(तेज), पद्म, शुक्ल ऐसे छह ही हैं । यहां **एव** शब्द से तो नियम आया ही और **नियमेन** कहा है, सो नैगमनय से छह प्रकार की

लेश्या है । पर्यायार्थिकनय से असंख्यातलोकमात्र भेद हैं । ऐसा अभिप्राय नियम शब्द से जानना । इति निर्देशाधिकारः ( निर्देश अधिकार समाप्त हुआ ।)

*२) वर्ण अधिकार –*

**वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।**
**सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ।।४९४।।**

**वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।**
**सा षोढा कृष्णादिः अनेकभेदा स्वभेदेन ।।४९४।।**

**टीका** – वर्ण नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न जो शरीर का वर्ण, उसे द्रव्यलेश्या कहते हैं । वह कृष्णादि छह प्रकार का है । वहां एक-एक भेद अपने-अपने भेदों से अनेकरूप जानने ।

वही कहते हैं -

**छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसण्णिहावण्णे ।**
**संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ।।४९५।।**

**षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशंखसन्निभा वर्णे ।**
**संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ।।४९५।।**

**टीका** – कृष्णलेश्या षट्पद अर्थात् भ्रमर के समान है । जिसके शरीर का वर्ण भ्रमर समान काला हो, उसके द्रव्यलेश्या कृष्ण जानना । ऐसे ही नीललेश्या नीलमणि समान है । कपोतलेश्या कपोत समान है । पीतलेश्या सुवर्ण समान है । पद्मलेश्या कमल समान है । शुक्ललेश्या शंखसमान है । पुनश्च इन्हीं एक-एक लेश्या के नेत्रइन्द्रिय के गोचर अपेक्षा से संख्यात भेद हैं । जैसे हीन-अधिकरूप संख्यात भेदवाला कृष्णवर्ण नेत्रइन्द्रिय से देखते हैं । पुनश्च स्कंधभेद की अपेक्षा से एक-एक के असंख्यात-असंख्यात भेद हैं । जैसे, द्रव्यकृष्णलेश्यावाले शरीर संबंधी स्कंध असंख्यात हैं । पुनश्च परमाणु भेद की अपेक्षा एक-एक के अनंत भेद हैं । जैसे द्रव्यकृष्णलेश्यावाले शरीर संबंधी स्कंधों में अनंत परमाणु पाये जाते हैं । इसीतरह सर्व लेश्याओं के भेद जानना ।

**णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हू तिसुरणरतिरिये ।**
**उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा ।।४९६।।**

**निरयाः कृष्णाः कल्पा भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि ।**
**उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ।।४९६।।**

**टीका** – सभी नारकी कृष्णवर्ण ही हैं । कल्पवासी देवों की जैसी भावलेश्या है, वैसे ही वर्ण के वे धारक हैं । पुनश्च भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव, मनुष्य, तिर्यंच तथा देवों का विक्रिया से बना शरीर, वे छहों वर्ण के धारक हैं । पुनश्च उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि संबंधी मनुष्य और तिर्यंच अनुक्रम से सूर्यसमान, चन्द्रसमान और हरित वर्ण के धारक हैं ।

**बादरआऊतेऊ सुक्कातेऊ य वाऊकायाणं ।**
**गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णो य ।।४९७।।**

**बादराप्तैजसौ शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।**
**गोमूत्रमुद्गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ।।४९७।।**

**टीका** – बादर अप्कायिक शुक्लवर्ण है । बादर अग्निकायिक पीतवर्ण है। बादर वायुकायिकों में घनोदधिवात तो गोमूत्र के समान वर्ण का धारक है, घनवात मूंगे के समान वर्ण का धारक है, तनुवात का वर्ण प्रकट नहीं है, अव्यक्त है ।

**सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्व विग्गहे सुक्का ।**
**सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवेणियमा ।।४९८।।**

**सर्वेषां सूक्ष्मानां कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।**
**सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ।।४९८।।**

**टीका** – सर्व ही सूक्ष्म जीवों का शरीर कपोतवर्ण है । सभी जीव विग्रहगति में शुक्लवर्ण ही हैं । पुनश्च सभी जीव अपनी पर्याप्ति के प्रारंभ के प्रथम समय से लेकर शरीरपर्याप्ति की पूर्णता तक की जो अपर्याप्त अवस्था *(निर्वृत्तिअपर्याप्त)* है वहां कपोतवर्ण ही है, ऐसा नियम है । ऐसा शरीरों का वर्ण कहा, सो जिसके शरीर का जो वर्ण है, वही उसकी द्रव्यलेश्या जाननी । इति वर्णाधिकारः *(वर्णाधिकार समाप्त हुआ।)*

***३) परिणाम अधिकार*** – आगे परिणामाधिकार पांच गाथाओं द्वारा कहते हैं–

**लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।**
**तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ।।४९९।।**

**लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।**
**तत्र क्लिष्टानि अशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ।।४९९।।**

**टीका** – कषाय संबंधी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं । उनको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग दीजिये । वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभागमात्र तो संक्लेशस्थान हैं । वे भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं । पुनश्च एक भागमात्र विशुद्धिस्थान हैं । वे भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं । क्योंकि असंख्यात के भेद बहुत हैं । वहां संक्लेशस्थान तो अशुभलेश्या संबंधी जानने और विशुद्धिस्थान शुभलेश्या संबंधी जानने।

**तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तदा मंदा ।**
**मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ।।५००।।**

**तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।**
**मंदतरा मंदतमाः षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ।।५००।।**

**टीका** – पहले जो असंख्यातलोक के बहुभागमात्र अशुभलेश्या संबंधी संक्लेशस्थान कहे वे कृष्ण, नील, कपोत भेद से तीन प्रकार के हैं । वहां पहले संक्लेशस्थानों का जो प्रमाण कहा उसको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग देनेपर, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्या संबंधी तीव्रतम कषायरूप संक्लेशस्थान जानने। पुनश्च उस अवशेष एक भाग को असंख्यातलोक का भाग देनेपर, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र नीललेश्या संबंधी तीव्रतर कषायरूप संक्लेशस्थान जानने । पुनश्च उस अवशेष एक भागमात्र कपोतलेश्या संबंधी तीव्रकषायरूप संक्लेशस्थान जानने ।

पुनश्च असंख्यातलोक के एक भागमात्र शुभलेश्या संबंधी विशुद्धिस्थान कहे वे पीत(तेज), पद्म, शुक्ल भेद से तीन प्रकार के हैं । वहां पहले जो विशुद्धिस्थानों का प्रमाण कहा उसको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र पीतलेश्या संबंधी मंदकषायरूप विशुद्धिस्थान जानने । पुनश्च

उस अवशेष एक भाग को असंख्यातलोक का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र पद्मलेश्या संबंधी मंदतर कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने । पुनश्च उस अवशेष एक भागमात्र शुक्ललेश्या संबंधी मंदतम कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने ।

वहां इन कृष्णलेश्या आदि छहों स्थानों में एक एक में अनंतभागादिक षट्स्थान होते हैं । वहां अशुभरूप तीन भेदों में तो उत्कृष्ट से लेकर जघन्य तक असंख्यातलोकमात्र बार षट्स्थानपतित संक्लेशहानि पायी जाती है । तथा शुभरूप तीन भेदों में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक असंख्यातलोकमात्र बार षट्स्थानपतित विशुद्ध परिणामों की वृद्धि पायी जाती है । परिणामों की अपेक्षा से संक्लेश विशुद्धि के अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनकी अपेक्षा से षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि जानना ।

**असुहाणं वरमज्झिमअवरंसे किण्हणीलकाउतिए ।**
**परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स ।।५०१।।**

**अशुभानां वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकापोतत्रिकानाम् ।**
**परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः क्लेशस्य ।।५०१।।**

**टीका** - यदि संक्लेश परिणामों की हानिरूप परिणमे तो अनुक्रम से कृष्ण के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; नील के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; कपोत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंशरूप परिणमता है ।

**काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा ।**
**एवं किलेसहाणी-वड्ढीदो होदि असुहतियं ।।५०२।।**

**कापोतं नीलं कृष्णं, परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा ।**
**एवं क्लेशहानिवृद्धितो भवति अशुभत्रिकम् ।।५०२।।**

**टीका** - पुनश्च यदि संक्लेश परिणामों की वृद्धिरूप परिणमे तो अनुक्रम से कपोतरूप, नीलरूप, कृष्णरूप परिणमता है । ऐसे संक्लेश की हानि-वृद्धि से तीन अशुभस्थान होते हैं ।

**तेऊ पडमे सुक्के सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा ।**
**सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि ।।५०३।।**

**तेजसि पद्मे शुक्ले शुभानामवराद्यंशगे आत्मा ।**
**शुद्धेश्च वृद्धितो हानितः अन्यथा भवति ।।५०३।।**

**टीका** – पुनश्च यदि विशुद्ध परिणामों की वृद्धि हो, तो अनुक्रम से पीत, पद्म, शुक्ल के जघन्य, मध्यम उत्कृष्टरूप अंशरूप परिणमता है । और यदि विशुद्ध परिणामों की हानि हो, तो अन्यथा अर्थात् शुक्ल, पद्म, पीत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंशरूप अनुक्रम से परिणमता है । इति परिणामाधिकारः (परिणाम अधिकार समाप्त हुआ ।)

४) ***संक्रमण अधिकार*** – आगे संक्रमणाधिकार तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं–

**संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदि किण्हसुक्काणं ।**
**वड्ढिसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभये वि ।।५०४।।**

**संक्रमणं स्वस्थानपरस्थानं भवतीति कृष्णशुक्लयोः ।**
**वृद्धिषु हि स्वस्थानमुभयं हानौ शेषस्योभयेऽपि ।।५०४।।**

**टीका** – संक्रमण नाम परिणामों के पलटने का है । वह संक्रमण दो प्रकार का है – स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण ।

वहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था, वह परिणाम पलटकर उसी लेश्यारूप रहे, वह तो स्वस्थानसंक्रमण है ।

तथा जो परिणाम पलटकर अन्य लेश्या को प्राप्त हो, वह परस्थानसंक्रमण है।

वहां कृष्णलेश्या और शुक्ललेश्या की वृद्धि में तो स्वस्थानसंक्रमण ही है; क्योंकि संक्लेश की वृद्धि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंश तक ही है और विशुद्धता की वृद्धि शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश तक ही है । पुनश्च कृष्णलेश्या और शुक्ललेश्या के हानि में स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण दोनों पाये जाते हैं । यदि उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या से संक्लेश की हानि हुयी, तो कृष्णलेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तन करे, वहां स्वस्थानसंक्रमण हुआ और यदि नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तन करे, वहां परस्थानसंक्रमण हुआ । इसतरह कृष्णलेश्या के हानि में दोनों संक्रमण हैं । पुनश्च उत्कृष्ट शुक्ललेश्या से यदि विशुद्धता की हानि हो, तो शुक्ललेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तन करे, वहां स्वस्थानसंक्रमण हुआ । और यदि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तन करे,

वहां परस्थानसंक्रमण हुआ । इसतरह शुक्ललेश्या के हानि में दोनों संक्रमण हैं ।

पुनश्च अवशेष नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्याओं में दोनों जाति के संक्रमण हानि में भी और वृद्धि में भी पाये जाते हैं । वृद्धि-हानि होनेपर जो जिस लेश्यारूप था, उसी लेश्यारूप रहे, वहां स्वस्थानसंक्रमण होता है । तथा वृद्धि-हानि होनेपर जिस लेश्यारूप था उससे अन्य लेश्यारूप प्रवर्ते, वहां परस्थानसंक्रमण होता है । इसतरह चारों लेश्याओं के हानि में और वृद्धि में उभय (दोनों) संक्रमण हैं ।

**लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।**
**सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ।।५०५।।**

**लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः ।**
**स्वस्थाने अवरात् हानिर्नियमात् परस्थाने ।।५०५।।**

**टीका** – कृष्णादि सर्व लेश्याओं के उत्कृष्ट स्थान में जितने परिणाम हैं, उनसे उत्कृष्ट स्थान के समीपवर्ती जो उसी लेश्या का स्थान उसमें अवर हानि अर्थात् उत्कृष्ट स्थान से अनंतभागहानि युक्त परिणाम हैं । क्योंकि उत्कृष्ट के अनंतर जो परिणाम, उसको उर्वंक *(उ ऐसी सहनानी)* कहा है, सो अनंतभाग की संदृष्टि उर्वंक है ।

पुनश्च स्वस्थान में कृष्णादि सर्व लेश्याओं के जघन्य स्थान के समीपवर्ती जो स्थान है, उसमें जघन्य स्थान के परिणामों से अवरवृद्धि अर्थात् अनंतभागवृद्धि युक्त परिणाम पाये जाते हैं; क्योंकि जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कहा है वह अनंतगुणवृद्धि की सहनानी आठ का अंक है; उसके अनंतर उर्वंक ही है ।

पुनश्च सर्व लेश्याओं के जघन्य स्थान से यदि परस्थानसंक्रमण होता है तो उस जघन्य स्थान के परिणामों से अनंतगुणहानि से युक्त अनंतर स्थान में परिणाम होते हैं । शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान के अनंतर तो पद्मलेश्या का उत्कृष्ट स्थान है और कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान के अनंतर नीललेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। वहां अनंतगुणहानि पायी जाती है । ऐसे ही सर्व लेश्याओं में जानना । कृष्ण, नील, कपोत में तो हानि-वृद्धि संक्लेश परिणामों की जाननी । पीत, पद्म, शुक्ल में हानि-वृद्धि विशुद्ध परिणामों की जाननी ।

इस गाथा में कहे हुये अर्थ का कारण आगे प्रकट करके कहते हैं –

**संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।**
**परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ।।५०६।।**

**संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।**
**परिमाणं च च पूर्वमुक्तक्रमं भवति श्रुतज्ञाने ।।५०६।।**

**टीका –** इस संक्रमण में हानि में अनंतभागहानि आदि छह स्थान हैं तथा वृद्धि में अनंतभागवृद्धि आदि छह स्थान हैं । उनके नाम और प्रमाण का अनुक्रम जो पहले श्रुतज्ञानमार्गणा में पर्यायसमास श्रुतज्ञान का वर्णन करते समय कहा है, वह यहां जानना । सो अनंतभाग, असंख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा, अनंतगुणा ये तो षट्स्थानों के नाम हैं । इस अनंतभागादिक की सहनानी क्रम से उर्वंक *(उ)*, चार, पांच, छह, सात, आठ का अंक है । पुनश्च अनंत का प्रमाण जीवराशिमात्र, असंख्यात का प्रमाण असंख्यातलोकमात्र, संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातमात्र ऐसा प्रमाण गुणकार और भागहार में जानना । पुनश्च यंत्रद्वार से जो वहां अनुक्रम कहा है, वही अनुक्रम यहां जानना । वृद्धि में तो वहां कहा है वही अनुक्रम जानना।

तथा हानि में उलटा अनुक्रम जानना । कैसे ? वह कहते हैं – कपोतलेश्या के जघन्य से लेकर कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट तक विवक्षा हो तो क्रम से संक्लेश की वृद्धि होती है । और यदि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट से लेकर कपोतलेश्या के जघन्य तक विवक्षा हो तो क्रम से संक्लेश की हानि होती है । पुनश्च पीत के जघन्य से लेकर शुक्ल के उत्कृष्ट तक विवक्षा हो तो क्रम से विशुद्धि की वृद्धि होती है और यदि शुक्ल के उत्कृष्ट से लेकर पीत के जघन्य तक विवक्षा हो तो क्रम से विशुद्ध की हानी होती है । वहां वृद्धि में यथासंभव षट्स्थानपतितवृद्धि जाननी, हानि में हानि जाननी । वहां पहले जो वृद्धि में अनुक्रम कहा था उस अनुक्रम के अंत में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार अनंतभागवृद्धि होकर एक बार अनंतगुणवृद्धि होती है । वहां अनंतगुणवृद्धिरूप जो स्थान है, वह नवीन षट्स्थानपतितवृद्धि के प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है । और इसके पहले जो अनंतभागवृद्धिरूप स्थान हुआ वह विवक्षित षट्स्थानपतितवृद्धि का अंतिम स्थान है । पुनश्च नवीन षट्स्थानपतितवृद्धि के अनंतगुणवृद्धिरूप प्रथम स्थान के आगे सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अनंतभागवृद्धिरूप स्थान होते

हैं । उसके आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना ।

अब यहां कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट स्थान है वह षट्स्थानपतित के अंतिम स्थानरूप है, इसलिये पूर्व स्थान से अनंतभागवृद्धिरूप है । तथा कृष्णलेश्या का जघन्य स्थान है, वह षट्स्थानपतित का प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है । इसलिये इसके पूर्व के नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान से अनंतगुणवृद्धिरूप यह स्थान जानना । पुनश्च कृष्णलेश्या के जघन्य के समीपवर्ती स्थान उस जघन्य स्थान से अनंतभागवृद्धिरूप जानना । ऐसे ही अन्य स्थानों में और अन्य लेश्याओं में वृद्धि का अनुक्रम जानना ।

पुनश्च यदि हानि की अपेक्षा कथन करना है तो कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थान से उसके समीपवर्ती स्थान अनंतभागहानि युक्त जानना । कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान से नीललेश्या का उत्कृष्ट स्थान अनंतगुणहानि युक्त जानना । कृष्णलेश्या के जघन्य के समीपवर्ती स्थान से जघन्य स्थान अनंतभागहानि युक्त जानना ।

ऐसे ही अन्य स्थानों में अन्य लेश्याओं में यंत्रद्वार से कहे हुये अनुक्रम से उलटे अनुक्रम युक्त हानि का अनुक्रम जानना । इसतरह संक्रमण में वृद्धि-हानि है। इति संक्रमणाधिकारः (संक्रमण अधिकार समाप्त हुआ ।)

५) ***कर्माधिकार*** – आगे कर्माधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

**पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्टारण्णमज्झदेसम्मि ।**
**फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ।।५०७।।**

**णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।**
**खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ।।५०८।।जुम्मम्।**

**पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।**
**फलभरितवृक्षमेकं दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति ।।५०७।।**

**निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्त्वा चित्वा पतितानि ।**
**खादितुं फलानि इति यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ।।५०८।।युग्मम्।**

**टीका** – कृष्णादिक एक-एक लेश्यावाले छह पथिक पुरुष मार्ग से भ्रष्ट हुये। वहां वन में एक फलों से भरे हुये वृक्ष को देखकर ऐसे चिंतते हैं – कृष्णलेश्यावाला

विचार करता है कि मैं इस वृक्ष को मूल से उखाड़कर फल खाऊंगा । नीललेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष के धड़ को काटकर खाऊंगा । कपोतलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष की बड़ी शाखाओं को काटकर फल खाऊंगा । पीतलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष की छोटी शाखाओं को काट कर फल खाऊंगा । पद्मलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष के फलों को ही तोड़ कर फल खाऊंगा । शुक्ललेश्यावाला विचार करता है कि मैं अपने आप टूट कर गिरे हुये फलों को खाऊंगा । ऐसे मनपूर्वक जो वचन हो वह उन लेश्याओं का कर्म जानना । यहां एक उदाहरण कहा है । इसीप्रकार अन्य जानने । इति कर्माधिकारः (कर्माधिकार समाप्त हुआ ।)

६) ***लक्षणाधिकार*** – आगे लक्षणाधिकार नौ गाथाओं द्वारा कहते हैं –

**चंडो ण मुंचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।**
**दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ।।५०९।।**

**चण्डो न मुञ्चति वैरं भण्डनशीलश्च धर्मदयारहितः ।**
**दुष्टो न च एति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ।।५०९।।**

**टीका** – प्रचंड तीव्र क्रोधी हो, वैर न छोड़े, झगड़ा करने-युद्ध करने का जिसका सहज स्वभाव हो, दया धर्म से रहित हो, दुष्ट हो, किसी गुरुजनादिक के वश न हो ऐसे लक्षण कृष्णलेश्यावाले के हैं ।

**मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।**
**माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ।।५१०।।**

**मन्दो बुद्धिविहीनो निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च ।**
**मानी मायी च तथा आलस्यः चैव भेद्यश्च ।।५१०।।**

**टीका** – स्वच्छंदी हो अथवा क्रिया में मंद हो, वर्तमान कार्य को न जाने ऐसा बुद्धिहीन हो, विज्ञान चातुर्य से हीन हो, स्पर्शादिक विषयों में अतिलंपटी हो, मानी हो, मायावी हो, कुटील हो, क्रिया में कुंठित हो, जिसके अभिप्राय को और कोई न जाने, आलसी हो, ये सब कृष्णलेश्यावाले के लक्षण हैं ।

**णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य ।**
**लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ।।५११।।**

**निद्रावञ्चनबहुलो धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च ।**
**लक्षणमेतद्भणितं समासतो नीललेश्यस्य ।।५११।।**

**टीका** - जिसके निद्रा बहुत हो, औरों को ठगना जिसके बहुत हो, धन-धान्यादिक में जिसके तीव्र वांछा हो, ऐसा संक्षेप से नीललेश्यावाले का लक्षण है।

**रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोयभयबहुलो ।**
**असुयदि परभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुलो ।।५१२।।**

**रुष्यति निन्दति अन्यं दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।**
**असूयति परिभवति परं प्रशंसति आत्मानं बहुशः ।।५१२।।**

**टीका** - पर के ऊपर क्रोध करे, बहुत प्रकार से दूसरों की निंदा करे, बहुत प्रकार से औरों को दुःख दे, शोक जिसके बहुत हो, भय जिसके बहुत हो, दूसरों को अच्छा नहीं देख सके, दूसरों का अपमान करे, अपनी बहुत प्रकार से बढ़ाई करे ।

**ण य पत्तियदि परं सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो ।**
**तुसदि अभित्थुवंतो ण य जाणदि हाणिवड्ढिं वा ।।५१३।।**

**न च प्रत्येति परं स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।**
**तुष्यति अभिष्टुवतो न च जानाति हानिवृद्धी वा ।।५१३।।**

**टीका** - अपने समान पापी-कपटी दूसरों को मानता हुआ दूसरों का विश्वास नहीं करता, जो अपनी स्तुति करे उसके ऊपर बहुत संतुष्ट होता है, अपनी और पर की हानि-वृद्धि को न जाने ।

**मरणं पत्थेदि रणे देहि सुबहुगं हि थुव्वमाणो दु ।**
**ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ।।५१४।।**

**मरणं प्रार्थयते रणे ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।**
**न गणयति कार्याकार्यं लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ।।५१४।।**

**टीका** – युद्ध में मरण को चाहे, जो अपनी बढ़ाई करे उसे बहुत धन दे, कार्य–अकार्य को गिने नहीं ऐसे लक्षण कपोतलेश्यावाले के हैं ।

**जाणदि कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी ।**
**दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ।।५१५।।**

**जानाति कार्याकार्यं सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।**
**दयादानरतश्च मृदुः लक्षणमेतत्तु तेजसः ।।५१५।।**

**टीका** – कार्य–अकार्य को जाने, सेवनेयोग्य – न सेवनेयोग्य को जाने, सब में ही समदर्शी हो, दया–दान में प्रीतिवंत हो, मन, वचन, काय में कोमल हो, ऐसे लक्षण पीतलेश्यावाले के हैं ।

**चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि ।**
**साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ।।५१६।।**

**त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।**
**साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ।।५१६।।**

**टीका** – त्यागी हो, भद्र परिणामी हो, सुकार्यरूप जिसका स्वभाव हो, शुभभाव में उद्यमीरूप जिसके कर्म हो, कष्ट और अनिष्ट उपद्रव को सहे, मुनिजन और गुरुजन की पूजा में प्रीतिवंत हो, ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावाले के हैं ।

**ण य कुणदि पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं ।**
**णत्थि य रायद्दोसा णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स ।।५१७।।**

**न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।**
**नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोऽपि च शुक्ललेश्यस्य ।।५१७।।**

**टीका** – पक्षपात न करे, निंदा न करे, सब जीवों में समान हो, इष्ट–अनिष्ट में राग–द्वेष रहित हो, स्त्री–पुत्र आदि में स्नेहरहित हो ऐसे लक्षण शुक्ललेश्यावाले के

हैं । इति लक्षणाधिकारः (लक्षणाधिकार समाप्त हुआ ।)

***७) गतिअधिकार*** – आगे गतिअधिकार ग्यारह सूत्रों द्वारा कहते हैं –

**लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।**
**आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ।।५१८।।**

**लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।**
**आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ।।५१८।।**

**टीका** – लेश्या के छब्बीस अंश हैं । वहां छहों लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद से अठारह अंश हैं । तथा कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से आगे और पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से पहले कषायों के उदय स्थानों में आठ मध्यम अंश हैं ऐसे छब्बीस अंश हुये । वहां आयुकर्म के बंधयोग्य आठ मध्यम अंश जानने । उनका स्वरूप आगे स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार में भी कहेंगे । वे आठ मध्यम अंश आठ अपकर्ष काल में होते हैं । वर्तमान भुज्यमान आयु को अपकर्ष, अपकर्ष अर्थात् घटाकर, घटाकर आगामी परभव की आयु को बांधता है उसे अपकर्ष कहते हैं ।

अपकर्षों का स्वरूप दिखाते हैं – वहां उदाहरण कहते हैं – किसी कर्मभूमिया मनुष्य या तिर्यंच की भुज्यमान आयु पैंसठ सौ इकसठ (६५६१) वर्ष की है । उस आयु के *(तीन में से)* दो भाग जानेपर इक्कीस सौ सत्तासी वर्ष रहे । वहां तीसरे भाग के शुरु होते ही प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल तक प्रथम अपकर्ष होता है । वहां परभव संबंधी आयु का बंध होता है । यदि वहां आयु न बंधे तो उस तीसरे भाग के *(तीन में से)* दो भाग बीतनेपर आयु के सात सौ उनतीस वर्ष शेष रहते हैं, वहां अंतर्मुहूर्त काल तक दूसरे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । यदि वहां भी न बंधे, तो उसके भी *(तीन में से)* दो भाग जानेपर दो सौ तैंतालीस वर्ष आयु के शेष रहनेपर अंतर्मुहूर्त काल मात्र तीसरे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । वहां भी न बंधे तो, उसके भी (तीन में से) दो भाग जानेपर इक्यासी वर्ष रहनेपर अंतर्मुहूर्त तक चौथे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । ऐसे ही दो दो भाग जानेपर सत्ताइस वर्ष रहनेपर वा नौ वर्ष रहनेपर वा तीन वर्ष रहनेपर वा एक वर्ष रहनेपर अंतर्मुहूर्त मात्र काल तक पांचवें वा छठवें वा सातवें वा आठवें

अपकर्ष में परभव की आयु बांधने का योग्यपना जानना । इसी तरह भुज्यमान आयु का जो प्रमाण हो उसके त्रिभाग-त्रिभाग में आठ अपकर्ष जानना ।

यदि आठों ही अपकर्षों में आयु का बंध न हो और नौवां आदि अपकर्ष है नहीं, तो आयु का बंध कैसे होता है ? उसे कहते हैं –

**असंक्षेपाद्धा** अर्थात् आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण काल भुज्यमान आयु का अवशेष रहे उसके पहले, अंतर्मुहूर्त काल मात्र समयप्रबद्धों के द्वारा परभव की आयु को बांधकर पूर्ण करता है ऐसा नियम है । यहां विशेष निर्णय करते हैं –

विषादिक के निमित्त से कदलीघात द्वारा जिनका मरण होता है, उन्हें सोपक्रमायुष्क कहते हैं । इसलिये देव, नारकी, भोगभूमियां अनुपक्रमायुष्क हैं । सोपक्रमायुष्क जीव पूर्वोक्त रीति से परभव की आयु को बांधते हैं । वहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षों में आयु के बंध होने के योग्य परिणामों द्वारा कितने ही जीव आठ बार, कितने ही जीव सात बार, कितने ही छह बार, कितने ही पांच बार, कितने ही चार बार, कितने ही तीन बार, कितने ही दो बार, कितने ही एक बार परिणमते हैं ।

आयु के बंध योग्य परिणाम अपकर्षों में ही होते हैं, ऐसा सहज ही स्वभाव है, अन्य कोई कारण नहीं है ।

वहां तीसरे भाग के प्रथम समय में जिन जीवों ने परभव की आयु का बंध प्रारम्भ किया वे अंतर्मुहूर्त में ही निष्ठापन *(पूर्ण)* करते हैं । अथवा दूसरी बार आयु का नौवां भाग *(तीसरे भाग का तीसरा भाग)* अवशेष रहनेपर वहां उस बंध के योग्य होता है । अथवा तीसरी बार आयु का सत्ताइसवां भाग अवशेष रहनेपर उस बंध के होने योग्य होता है, ऐसे आठवें अपकर्ष तक जानना । ऐसा कोई नियम नहीं है कि इन अपकर्षों में आयु का बंध होता ही है । इनमें आयु का बंध होने योग्य होता है । यदि बंध हो तो हो, न हो तो न हो । इसतरह आयु के बंध का विधान कहा ।

जैसे अन्य काल में प्रतिसमय समयप्रबद्ध बंधता है, वह आयुकर्म को छोड़कर अन्य सात कर्मरूप होकर परिणमता है । वैसे आयु का बंध जितने काल होता है, उतने काल में प्रतिसमय जो समयप्रबद्ध बंधते हैं वे आठों ही कर्मरूप होकर परिणमते हैं ऐसा जानना ।

पुनश्च जिस समय में प्रथम ही जिसका बंध होता है वहां उसका प्रारम्भ कहते हैं । प्रतिसमय उस प्रकृति का बंध हुआ करता है जब बंध होकर समाप्त होता है, वहां निष्ठापक कहते हैं ।

देव और नारकियों के छह महिने आयु के अवशेष रहनेपर आयु का बंध करने को योग्य होते हैं, पहले नहीं होते । वहां छह महिने में ही त्रिभाग-त्रिभाग से आठ अपकर्ष होते हैं, उनमें आयु का बंध करने योग्य होते हैं ।

पुनश्च एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्ष से लेकर तीन पल्य तक असंख्यात वर्षमात्र आयु के धारक भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य भी निरुपक्रमायुष्क होते हैं । इनके आयु के नौ मास अवशेष रहनेपर आठ अपकर्षों द्वारा परभव की आयु का बंध होने की योग्यता होती है । पुनश्च इतना जानना ह्न जिस गति संबंधी आयु का बंध प्रथम अपकर्ष में हुआ हो, पश्चात् यदि द्वितीयादि अपकर्षों में आयु का बंध हो तो उसी गति संबंधी आयु का बंध होता है । और यदि प्रथम अपकर्ष में आयु का बंध न हुआ हो और दूसरे अपकर्ष में जिस किसी आयु का बंध हुआ हो, तो तृतीयादि अपकर्षों में यदि आयु का बंध होगा तो उसी गति संबंधी आयु का बंध होता है, ऐसे आगे भी जानना । इसतरह कितने ही जीवों का आयु का बंध तो एक ही अपकर्ष में होता है, कितने ही जीवों का दो अपकर्षों द्वारा होता है, कितने ही जीवों का तीन, चार, पांच, छह, सात अथवा आठ अपकर्षों द्वारा होता है ।

वहां आठ अपकर्षों द्वारा परभव की आयु का बंध करनेवाले जीव अल्प हैं। उनसे संख्यातगुणे सात अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले हैं । उनसे संख्यातगुणे छह अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले हैं । ऐसे संख्यातगुणे संख्यातगुणे पांच, चार, तीन, दो, एक अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले जीव जानने ।

पुनश्च आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के आठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल अल्प है । उससे विशेष अधिक उसका उत्कृष्ट काल है । आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के सातवें अपकर्ष में जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट उससे विशेष अधिक है । सात अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के सातवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट उससे विशेष अधिक है ।

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आठ अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ० | जघन्य | उत्कृष्ट | सात अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ८ | ८ | ८ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | छह अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ८ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | पांच अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | | | | | | | |
| ८ | ६ | ६ | ७ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | चार अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | | | | |
| ८ | ५ | ५ | ७ | ५ | ५ | ६ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | तीनअपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | | | | |
| ८ | ४ | ४ | ७ | ४ | ४ | ६ | ४ | ४ | ५ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | दो अपकर्षों से आयु बंधने की रचना | | | | | |
| ८ | ३ | ३ | ७ | ३ | ३ | ६ | ३ | ३ | ५ | ३ | ३ | ४ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट | एक अपकर्ष से आयु बंधने की रचना | | |
| ८ | २ | २ | ७ | २ | २ | ६ | २ | २ | ५ | २ | २ | ४ | २ | २ | ३ | २ | २ | २ | २ | २ | ० | जघन्य | उत्कृष्ट |
| ८ | १ | १ | ७ | १ | १ | ६ | १ | १ | ५ | १ | १ | ४ | १ | १ | ३ | १ | १ | २ | १ | १ | १ | १ | १ |

पुनश्च आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है ।

सात अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है । पुनश्च छह अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है । इसतरह एक अपकर्ष द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के उस अपकर्ष के उत्कृष्ट काल तक बहत्तर (७२) भेद होते हैं । वहां जघन्य से उत्कृष्ट तो विशेष अधिक जानना । सो उस विवक्षित जघन्य को संख्यात का भाग देनेपर जो प्राप्त हो, वह विशेष का प्रमाण जानना । उसको जघन्य में जोड़नेपर उत्कृष्ट का प्रमाण होता है । उत्कृष्ट से आगे का जघन्य संख्यातगुणा जानना । इसप्रकार यद्यपि सामान्यपने से सब का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तथापि हीनाधिकपना जानने के लिये अल्पबहुत्व कहा है । यदि अपकर्षों में आयु का बंध होता है तो इतने इतने कालमात्र समयप्रबद्धों से बंध होता है ।

यह बहत्तर भेदों की रचना है *(यंत्र देखना)* । वहां आठ अपकर्षों द्वारा आयु बंधने की रचना में पहली पंक्ति के कोठों में जो आठ आठ के अंक हैं, उसका तो यह अर्थ जानना कि आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले का यहां ग्रहण है । उसके पश्चात् दूसरी, तीसरी पंक्ति में आठ, सात आदि अंक हैं, उसका यह अर्थ है कि आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के आठवें, सातवें आदि अपकर्षों का ग्रहण है । वहां दूसरी पंक्ति में जघन्य काल की अपेक्षा ग्रहण जानना। तीसरी पंक्ति में उत्कृष्ट काल की अपेक्षा ग्रहण जानना । इसी प्रकार सात, छह, पांच, चार, तीन, दो, एक अपकर्षों द्वारा आयु बांधनेवालों की अपेक्षा से इस रचना में अर्थ जानना । आठों रचनाओं के दूसरे और तीसरे पंक्तियों के सर्व कोठे बहत्तर होते हैं । इन बहत्तर स्थानों में आयु बंधने के काल का अल्पबहुत्व जानना । मध्यम भेदों के ग्रहण के निमित्त जघन्य और उत्कृष्ट के बीच में बिंदी की सहनानी जाननी।

इसतरह आयु को बंधने के योग्य लेश्याओं के मध्यम आठ अंशों की उत्पत्ति का आठ अपकर्षों द्वारा अनुक्रम कहा ।

**सेसट्ठारसअंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति ।**
**सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ।।५१९।।**

**शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति ।**
**शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ।।५१९।।**

**टीका** – उन मध्यम अंशों से अवशेष रहे जो लेश्या के अठारह अंश, वे चार गतियों में गमन के कारण हैं । मरण इन्हीं अठारह अंशों सहित होता है, मरण कर जीव यथायोग्य गति को प्राप्त होता है । वहां शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाला जीव सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान को प्राप्त होता है ।

**अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।**
**आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ।।५२०।।**

**अवरांशमृता भवन्ति शतारद्विके मध्यमांशकेन मृताः ।**
**आनतकल्पादुपरि सर्वार्थादिमे भवन्ति ।।५२०।।**

**टीका** – शुक्ललेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव शतार-सहस्रार *(ग्यारहवें-बारहवें)* स्वर्ग में उपजते हैं । शुक्ललेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव आनत *(तेरहवां)* स्वर्ग के ऊपर सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक के विजयादिक विमान तक *(अनुत्तर विमान तक)* यथासंभव उपजते हैं ।

**पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।**
**अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ।।५२१।।**

**पद्मोत्कृष्टांशमृता जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम् ।**
**अवरांशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ।।५२१।।**

**टीका** – पद्मलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सहस्रार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं । पद्मलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव सनत्कुमार-माहेन्द्र *(तीसरे-चौथे)* स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।

**मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।**
**साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ।।५२२।।**

**मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः ।**
**सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ।।५२२।।**

**टीका –** पद्मलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव सहस्रार स्वर्ग के नीचे और सनत्कुमार-माहेन्द्र के ऊपर यथासंभव उपजते हैं । पुनश्च पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम पटल में चक्र नामक इन्द्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों में उपजते हैं । *(विवक्षित पटल के मध्यमें जो विमान होता है उसे इन्द्रक कहते हैं तथा दिशा-विदिशाओं में पंक्तिरूप में पाये जाते हैं उन्हें श्रेणीबद्ध विमान कहते हैं, अन्यत्र जो हैं उन्हें प्रकीर्णक विमान कहते हैं ।)*

**अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।**
**मज्झिमअंसेण मुदा विमलविमाणादिबलभद्दे ।।५२३।।**

**अवरांशमृताः सौधर्मेशानादिमर्तौ श्रेण्याम् ।**
**मध्यमांशेन मृता विमलविमानादिबलभद्रे ।।५२३।।**

**टीका –** पीतलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव सौधर्म-ईशान *(पहले-दूसरे स्वर्ग)* के पहले पटल के ऋजु नामक इन्द्रक वा श्रेणीबद्ध विमानों में उपजते हैं । तथा पीतलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव सौधर्म-ईशान के दूसरे पटल के विमल नामक इन्द्रक से लेकर सनत्कुमार-माहेन्द्र के द्विचरम पटल के बलभद्र नामक इन्द्रक तक के विमानों में उपजते हैं ।

**किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।**
**पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायन्ते ।।५२४।।**

**कृष्णवरांशेन मृता अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।**
**पञ्चमचरमतिमिस्रे मध्ये मध्येन जायन्ते ।।५२४।।**

**टीका –** कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सातवीं नरक पृथ्वी का एक ही पटल है उसके अवधिस्थानक नामक इन्द्रक बिल में उपजते हैं।

H$îUbí`m H$ OKÝ` Ae g{hV _aZdmb Ord nmMdt nÏdr H$ A{V_ nQb H$ {V{_ò Zm_H$ BÝÐH$ _| CnOV h Ÿ& H$îUbí`m H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb Ord Ad{YñWmZH$ BÝÐH$ H$ Mma lUr~Õ {~bm| _| `m NRdt nÏdr H$ VrZm| nQbm| _| `m nmMdt nÏdr H$ Ma_ `m{Z A{V_ nQb _| `Wm`m½` CnOV hŸ&

## ZrbŠH$ñgg_Xm nM_AqYX`på_ Ada_Xm Ÿ&
## dmbH$gnÁO{bX _ÁP _ÁPU Om`V Ÿ&&525&&

### ZrbmËH$îQme_Vm… nÄM_mYÝÐH$ Ada_Vm… Ÿ&
### dmbH$mgàÁd{bV _Ü` _Ü`Z Om`ÝV Ÿ&&525&&

QrH$m - Zrbbí`m H$ CËH$îQ Ae g{hV _aZdmb Ord nmMdt nÏdr H$ {ÛMa_ nQb H$ AY Zm_H$ BÝÐH$ _| CnOV h Ÿ& {H$VZ hr Ord nmMd| nQb _| ^r CnOV h Ÿ& A[aîQm (nmMdt) nÏdr H$ A{V_ nQb _| H$îUbí`m H$ OKÝ` Ae g{hV _aZdmb ^r H$B Ord CnOV h, BVZm {def OmZZm Ÿ& nZü Zrbbí`m H$ OKÝ` Ae g{hV _aZdmb Ord dmbH$m nÏdr (Vrgar) H$ A{V_ nQb _| gàÁd{bV Zm_H$ BÝÐH$ _| CnOV h Ÿ& Zrbbí`m H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb Ord dmbH$mà^m nÏdr H$ gàÁd{bV BÝÐH$ H$ ZrM Ama MmWr nÏdr H$ gmVm| nQb Ama nmMdt nÏdr H$ AY BÝÐH$ H$ D$na `Wm`m½` CnOV h Ÿ&

*(dmMH$m| H$m gab hm Bg Ñ{îQ g ZaH$ npÏd`m| H$ AÝ` AÝ` Zm_ VWm CZH$ nQbm| H$s g»`m ZrM {bIV h -*

| *ZaH$ nÏdr* | *Zm_* | *AÝ` Zm_* | *nQbm| H$s g»`m* |
|---|---|---|---|
| *nhbr* | *aËZà^m* | *K_m* | *13* |
| *Xgar* | *eH$amà^m* | *dem* | *11* |
| *Vrgar* | *dmbH$mà^m* | *_Km* | *9* |
| *MmWr* | *nH$à^m* | *AOZm* | *7* |
| *nmMdt* | *Y_à^m* | *A[aîQm* | *5* |
| *NRdt* | *V_…à^m* | *_Kdr* | *3* |
| *gmVdt* | *_hmV_…à^m* | *_mKdr* | *1 )* |

daH$mAmXg_Xm gO{bX Om{V V{X`{Ua`ñg ü&
gr_V Ada_Xm _ÁP _ÁPU Om`V ü&&526&&

daH$mnmVme_Vm… gÁd{bV `mpÝV VVr`{Za`ñ` ü&
gr_ÝV_da_Vm _Ü` _Ü`Z Om`ÝV ü&&526&&

QrH$m - H$nmVbí`m H$ CËH$îQ Ae g{hV _aZdmb Ord Vrgar nÏdr H$ AmRd `m{Z {ÛMa_ nQb H$ gÁd{bV Zm_H$ BÝÐH$ {~b _ CnOV h ü& H$B Ord A{V_ nQb g~Yr gàÁd{bV Zm_H$ BÝÐH$ {~b _ ^r CnOV h, BVZm {def OmZZm ü& H$nmVbí`m H$ OKÝ` Ae g{hV _aZdmb Ord nhbr K_m nÏdr H$ nhb gr_VH$ BÝÐH$ _ CnOV h ü& H$nmVbí`m H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb Ord nhb nÏdr H$ gr_VH$ BÝÐH$ H$ ZrM ~mah nQbm _ VWm Vrgar _Km nÏdr H$ {ÛMa_ gÁd{bV BÝÐH$ H$ D$na H$ gmV nQbm _ VWm Xgar nÏdr H$ ½`mah nQbm _ `Wm`m½` CnOV h ü&

{H$ÊhMCŠH$mU nU _ÁPg_Xm h ^dUJm{X{V` ü&
nTdrAmCdUß\${XOrdg hd{V I b Ordm ü&&527&&

H$îUMVîH$mUm nZ… _Ü`me_Vm {h ^dZH$m{XÌ` ü&
n{Wì`ìdZñn{VOrdf ^dpÝV I b Ordm… ü&&527&&

QrH$m - nZ… AWmV `h {def h {H$ H$îU, Zrb, H$nmV BZ VrZ bí`mAm H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb H$_^{_`m {_Ï`mÑ{îQ {V`M Ama _Zî` VWm nrVbí`m H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb ^mJ^{_`m {_Ï`mÑ{îQ {V`M Ama _Zî` d ^dZdmgr, ì`Va, Á`m{Vfr Xdm _ CnOV h ü& nZü H$îU, Zrb, H$nmV, nrV BZ Mma bí`mAm H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb Eg {V`M Ama _Zî` VWm ^dZdmgr, ì`Va, Á`m{Vfr Ama gmY_-BemZ H$ dmgr Xd, {_Ï`mÑ{îQ, d ~mXa n`mßV nÏdrH$m{`H$, AnH$m{`H$, àË`H$ dZñn{VH$m{`H$ _ CnOV h ü& ^dZÌ`m{XH$ H$s Anjm `hm nrVbí`m OmZZrü& {V`M, _Zî` H$s Anjm H$îUm{X VrZ bí`m OmZZr ü&

{H$Êh{V`mU _pÁP_Ag_XmVCdmC{d`bg ü&
ga{Ua`m gJbñgqh Ua{V[a` Om{V gJOm½J ü&&528&&

H$îUÌ`mUm _Ü`_me_Vm… VOmdm`{dH$bf ‖&
ga{Za`m… ñdH$bí`m{^… Za{V`ÄM `mpÝV ñdH$`m½`_ ‖&&528&&

QrH$m - H$îU, Zrb, H$nmV H$ _Ü`_ Ae g{hV _aZdmb {V`M Ama _Zî` d A{¾H$m{`H$, dm`H$m{`H$, {dH$bÌ`, Agkr nMpÝÐ`, gmYmaU dZñn{V BZ_ CnOV h ‖& nZü ^dZÌ` Am{X gdmW{g{Õ VH$ H$ Xd Ama K_m{X gmV npÏd`m H$ ZmaH$s AnZr-AnZr bí`m H$ AZgma `Wm`m½` _Zî`J{V `m {V`MJ{V H$m àmßV hmV h ‖& `hm BVZm OmZZm {H$ {Og J{V g~Yr nhb Am` ~mYr hm Cgr J{V _, _aU hmV g_` Om bí`m hmVr h, CgH$ AZgma CnOVm h ‖& Og _Zî` H$ nhb Xdm` H$m ~Y hAm Ama `{X _aU H$ g_` H$îUm{X Ae^bí`m hm Vm ^dZ{ÌH$ _ hr CnOVm h, Eg hr AÝ`Ì OmZZm ‖& B{V JË`m{YH$ma… (J{V A{YH$ma g_mßV hAm ) ‖&

*8) ñdm_r A{YH$ma* - AmJ ñdm_r A{YH$ma gmV JmWmAm Ûmam H$hV h-

H$mD$ H$mD$ H$mD$ Urbm Urbm ` Urb{H$Êhm ` ‖&
{H$Êhm ` na_{H$Êhm bñgm nT_m{X nTdrU ‖&&529&&

H$nmVm H$nmVm H$nmVm Zrbm Zrbm M ZrbH$îU M ‖&
H$îUm M na_H$îUm bí`m àW_m{Xn{WdrZm_ ‖&&529&&

QrH$m - `hm ^mdbí`m H$s Anj m H$WZ h ‖& dhm ZmaH$s Ordm H$s bí`m H$hV h - K_m Zm_H$ nhbr nÏdr _ H$nmVbí`m H$m OKÝ` Ae h ‖& dem Zm_H$ Xgar nÏdr _ H$nmV H$m _Ü`_ Ae h ‖& _Km Zm_H$ Vrgar nÏdr _ H$nmV H$m CËH$îQ Ae Ama Zrb H$m OKÝ` Ae h ‖& AOZm Zm_H$ MmWr nÏdr _ Zrb H$m _Ü`_ Ae h ‖& A[aîQm Zm_H$ nmMdt nÏdr _ Zrb H$m CËH$îQ Ae h Ama H$îU H$m OKÝ` Ae h ‖& _Kdr Zm_H$ NRdt nÏdr _ H$îU H$m _Ü`_ Ae h‖& _mKdr Zm_H$ gmVdt nÏdr _ H$îU H$m CËH$îQ Ae h ‖&

Ua{V[a`mU AmKm B{J{dJb {VpÊU MC AgpÊUñg ‖&
gpÊUAnÊUJ{_ÀN gmgUgå_ {d Agh{V` ‖&&530&&

**नरतिरश्चामोघः एकविकले तिस्रः चतस्र असंज्ञिनः ।**
**संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेऽपि अशुभत्रिकम् ।।५३०।।**

**टीका** – मनुष्य और तिर्यंचों के **ओघ** अर्थात् सामान्यपने ऊपर बतायी हुयी छहों लेश्या पायी जाती हैं । एकेन्द्रिय और विकलत्रय के कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं । असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के कृष्णादि चार लेश्या पायी जाती हैं क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय कपोतलेश्या सहित मरे तो पहले नरक में उपजता है, पीतलेश्या सहित मरे तो भवनवासी और व्यंतर देवों में उपजता है तथा कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या सहित मरे तो यथायोग्य मनुष्य, तिर्यंच में उपजता है । इसलिये उसके चार लेश्या हैं । पुनश्च संज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि; तथा अपि शब्द से असंज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच; मिथ्यादृष्टि तथा सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्ति अपर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और भवनत्रिक देव इनमें कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं । तिर्यंच और मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टि है उसके अति संक्लेश परिणाम हो तो भी देशसंयमी के समान उसके कृष्णादि तीन लेश्या नहीं होती । तथापि जो उपशम सम्यक्त्व की विराधना करके सासादन होता है उसके अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं ।

*(**विशेषार्थ** – मनुष्य और तिर्यंचों के मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानवर्ती की अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं ।)*

**भोगा पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णि यं हवे णियमा ।**
**सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ।।५३१।।**

**भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात् ।**
**सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे वा पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ।।५३१।।**

**टीका** – भोगभूमि में निर्वृत्तिअपर्याप्त सम्यग्दृष्टि जीव में कपोतलेश्या का जघन्य अंश पाया जाता है । क्योंकि कर्मभूमियां मनुष्य या तिर्यंच पहले मनुष्य या तिर्यंच आयु का बंध करके पश्चात् क्षायिक या वेदक सम्यक्त्व को अंगीकार करके मरकर उस सहित ही वहां भोगभूमि में उपजता है । वहां उस योग्य संक्लेश परिणाम कपोत के जघन्य अंशरूप परिणमता है । पुनश्च भोगभूमि में पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव के पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पायी जाती हैं ।

**अयदो त्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।**
**तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ।।५३२।।**

**असंयत इति षड् लेश्याः शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये ।**
**ततः शुक्ला लेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ।।५३२।।**

**टीका –** असंयत तक चार गुणस्थानों में छहों लेश्या हैं । देशविरत आदि तीन गुणस्थानों में पीतादि तीन शुभलेश्या ही हैं । उसके ऊपर अपूर्वकरण से लेकर सयोगी तक छह गुणस्थानों में एक शुक्ललेश्या ही है । अयोगी गुणस्थान लेश्या रहित है क्योंकि वहां योग और कषाय का अभाव है ।

**णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया ।**
**अहवा जोगपउत्ती मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा ।।५३३।।**

**नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात् ।**
**अथवा योगप्रवृत्तिः मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ।।५३३।।**

**टीका –** जहां कषाय नष्ट हो गये हैं ऐसे उपशांत कषायादि तीन गुणस्थानों में कषाय का अभाव होनेपर भी लेश्या कहते हैं, वह भूतपूर्वगति न्याय से कहते हैं। पहले योगों की प्रवृत्ति कषाय सहित होती थी, वहां लेश्या का सद्भाव था, यहां योग पाया जाता है । इसलिये उपचार से यहां भी लेश्या का सद्भाव कहा है । अथवा योगों की प्रवृत्ति वही लेश्या, ऐसा भी कथन है, इसलिये योग यहां है ही उसकी प्रधानता से यहां लेश्या है ।

**तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।**
**एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ।।५३४।।**

**तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।**
**सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ।।५३५।।**

**त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।**
**एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ।।५३४।।**

**तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ला च ।**
**शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ।।५३५।।**

**टीका** – देवों की लेश्या कहते हैं । पर्याप्त भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी इन भवनत्रिक के पीतलेश्या का जघन्य अंश है । सौधर्म-ईशान दो स्वर्गवालों के पीतलेश्या का मध्यम अंश है । सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गवालों के पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्या का जघन्य अंश है । ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का मध्यम अंश है । शतार-सहस्रार दो स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अंश और शुक्ललेश्या का जघन्य अंश है । आनत आदि चार स्वर्ग और नौ ग्रैवेयक इन तेरह विमानवालों के शुक्ललेश्या का मध्यम अंश है । उसके ऊपर नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर इन चौदह विमानवालों के शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंश है । पुनश्च भवनत्रिक देव के अपर्याप्त अवस्था में कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही पायी जाती हैं। इसी से यह जाना जाता है कि वैमानिक देवों के तो पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में लेश्या समान ही है। इसप्रकार जिस जीव के जो लेश्या पायी जाती है वह जीव उस लेश्या का स्वामी जानना । इति स्वाम्याधिकारः (स्वामी अधिकार समाप्त हुआ।)

९) ***साधन अधिकार*** – आगे साधन अधिकार कहते हैं –

**वण्णोदयसंपादिदसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।**
**मोहुदयखओवसमोवसम खयजजीवफंदणं भावो ।।५३६।।**

**वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।**
**मोहोदयक्षयोपशममोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ।।५३६।।**

**टीका** – वर्ण नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ जो शरीर का वर्ण, वह द्रव्यलेश्या है । इसलिये द्रव्यलेश्या का साधन वर्ण नामक नामकर्म का उदय है। पुनश्च असंयत तक चार गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदय से, देशविरत आदि तीन गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से, उपशम श्रेणी में मोहनीय कर्म के उपशम से, क्षपक श्रेणी में मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ जो जीव का स्पंद, वह भावलेश्या है । स्पंद अर्थात् जीव के परिणामों का चंचल होना वा जीव के प्रदेशों का चंचल होना, वह भावलेश्या है । वहां परिणामों का चंचल होना कषाय है, प्रदेशों का चंचल होना योग है । इसकारण योग, कषायों से भावलेश्या होती है ।

इसलिये भावलेश्या का साधन मोहनीय कर्म का उदय या क्षयोपशम या उपशम या क्षय जानना। इति साधनाधिकारः ( साधन अधिकार समाप्त हुआ ।)

*१०) संख्याधिकार* – आगे संख्याधिकार छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

**किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।**
**हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ।।५३७।।**

**कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते ।**
**हीनक्रमाः कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ।।५३७।।**

**टीका** – कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवों का प्रमाण है वह, तीन शुभ लेश्यावालों के प्रमाण को संसारी जीवों के प्रमाण में से घटानेपर जितना रहे उतना जानना । वह किंचित् कम संसारीराशि मात्र हुआ । उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग रहे, उनके तीन भाग कीजिये, वहां एक-एक भाग एक एक लेश्यावालों का समानरूप जानना । जो एक भाग रहा उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एक भाग जुदा रखकर अवशेष बहुभाग को, पहले समान भागों में से कृष्णलेश्यावालों का हिस्सा था, उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उतने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । पुनश्च वह जो एक भाग रहा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एक भाग जुदा रखकर, अवशेष बहुभाग रहे उन्हें पहले समान भाग में से नीललेश्यावालों का हिस्सा था उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उतने नीललेश्यावाले जीव जानने। पुनश्च वह जो एक भाग रहा था उसको पहले समान भाग में से कपोतलेश्यावालों का हिस्सा था उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने कपोतलेश्यावाले जीव जानने । इसप्रकार कृष्णलेश्यावालों का द्रव्य से *(संख्या से)* प्रमाण कहा, वह क्रम से कुछ कुछ घटता जानना ।

अथवा काल अपेक्षा द्रव्य से *(संख्या का)* प्रमाण निकालते हैं । कृष्ण, नील, कपोत तीनों लेश्या का काल मिलानेपर जो कोई अंतर्मुहूर्तमात्र होता है, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग को जुदा रखकर, अवशेष रहे बहुभाग के तीन भाग कीजिये, वहां एक-एक समान भाग एक-एक लेश्या को दीजिये। जो एक भाग रहा, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक

भाग को जुदा रखकर अवशेष बहुभाग रहे उसको पूर्वोक्त कृष्णलेश्या के समान भाग में मिलाइये । अवशेष जो एक भाग रहा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग जुदा रखकर अवशेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्या के समान भाग में मिलाइये । जो एक भाग रहा, उसको पूर्वोक्त कपोतलेश्या के समान भाग में मिलाइये । ऐसे मिलानेपर जो-जो प्रमाण हुआ, वह-वह कृष्णादि लेश्याओं का काल जानना ।

अब यहां त्रैराशिक करना । वहां तीनों लेश्याओं के काल को जोड़नेपर जो प्रमाण आया वह तो प्रमाणराशि, अशुभ लेश्यावाले जीवों का जो किंचित् कम संसारी जीवमात्र प्रमाण वह फलराशि, तथा कृष्णलेश्या के काल का प्रमाण वह इच्छाराशि; वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणित करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि किंचित् कम तीन का भाग अशुभ लेश्यावाले जीवों के प्रमाण को देनेपर जो प्रमाण हुआ उतने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । ऐसे ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छाराशि अपने-अपने काल से नील और कपोत लेश्या में भी जीवों का प्रमाण जानना । ऐसे काल अपेक्षा द्रव्य से अशुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा है ।

**खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।**
**कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ।।५३८।।**

**क्षेत्रतः अशुभत्रिका अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः ।**
**कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ।।५३८।।**

**टीका** - क्षेत्रप्रमाण से तीन अशुभ लेश्यावाले जीव अनंत लोकमात्र जानने। लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे हैं; वहां क्रम से हीन क्रम जानना । कृष्णलेश्यावालों से कुछ कम नीललेश्यावालों का प्रमाण है । नीललेश्यावालों से कुछ कम कपोतलेश्यावालों का प्रमाण है । पुनश्च यहां प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने-अपने जीवों का प्रमाण करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत शलाका हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक लोक, इच्छाराशि अनंत शलाका करनेपर लब्धराशि अनंतलोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है । पुनश्च कालप्रमाण से अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, अतीत काल के समयों के प्रमाण से अनंतगुणे हैं । यहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना । यहां प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि

अपने-अपने जीवों का प्रमाण करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत शलाका हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक अतीतकाल, इच्छाराशि अनंत शलाका करनेपर, लब्धराशि अनंत अतीतकाल मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है ।

**केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा ।**
**तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा ।।५३९।।**

**केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः ।**
**तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः ।।५३९।।**

**टीका** - पुनश्च भावमान से *(भाव की अपेक्षा प्रमाण कहनेपर)* अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण के अनंतवें भागप्रमाण हैं। यहां भी पूर्ववत् हीन क्रम जानना । पुनश्च यहां प्रमाणराशि अपने-अपने लेश्यावाले जीवों का प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान *(उसके अविभागप्रतिच्छेद)* करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत प्रमाण हुआ । इसको प्रमाणराशि करके फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान करनेपर केवलज्ञान के अनंतवें भागमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है ।

पुनश्च पीतलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालों का प्रमाण असंख्यात है, तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले हैं, पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भाग शुक्ललेश्यावाले हैं । इसप्रकार द्रव्य से शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कहा ।

**जोइसियादो अहिया तिरिक्खसण्णिस्स संखभागोदु ।**
**सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ।।५४०।।**

**ज्योतिष्कतोऽधिकाः तिर्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु ।**
**सूचेरंगुलस्य च असंख्यभागं तु तेजस्त्रिकम् ।।५४०।।**

**टीका** - पीतलेश्यावाले जीव ज्योतिष्कराशि से कुछ अधिक हैं । कैसे ? वह कहते हैं - पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने तो ज्योतिषी देव हैं । घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने भवनवासी हैं । तीन सौ योजन के वर्ग का

भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने व्यंतर हैं । घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सौधर्म-ईशान स्वर्ग के देव हैं। पांच बार संख्यात से गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने पीतलेश्यावाले तिर्यंच हैं । तथा संख्यात पीतलेश्यावाले मनुष्य हैं । इन सब का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतने पीतलेश्यावाले जीव जानने ।

पद्मलेश्यावाले जीव पीतलेश्यावाले जीवों से संख्यातगुणा हीन हैं *(संख्यातवें भाग हैं)* तथापि पीतलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचों से भी संख्यातगुणे हीन हैं । क्योंकि पद्मलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के प्रमाण में पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव और मनुष्य इनका प्रमाण मिलानेपर जो जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र प्रमाण आता है, उतने पद्मलेश्यावाले जीव हैं ।

शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसतरह क्षेत्रप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।

**बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं ।**
**तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ।।५४१।।**

**द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानम् ।**
**तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ।।५४१।।**

**टीका** - पहले जो पीतलेश्यावालों का प्रमाण ज्योतिषी देवराशि से साधिक कहा और पद्मलेश्या का प्रमाण संज्ञी तिर्यंचों के संख्यातवें भागमात्र कहा, वहां दो सौ छप्पन का वर्ग पणट्ठी उसप्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने ज्योतिषी जानना तथा इनके संख्यातवें भागप्रमाण संज्ञी तिर्यंचों का प्रमाण जानना ।

**तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।**
**ओहि असंखेज्जदिमा तेउतिया भावदो होंति ।।५४२।।**

**तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः ।**
**अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवंति ।।५४२।।**

**टीका** – पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्पप्रमाण हैं। तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं । कल्पकाल का प्रमाण बीस कोडाकोडि सागर के जितने समय हो, उतना जानना । शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । ऐसे कालप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।

पुनश्च अवधिज्ञान के जितने भेद हैं उनके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं । तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं । पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भागमात्र शुक्ललेश्यावाले हैं । ऐसे भावप्रमाण द्वारा पीत, पद्म, शुक्ल लेश्यावालों का प्रमाण कहा । इति संख्याधिकारः (संख्या अधिकार समाप्त हुआ ।)

*११) क्षेत्राधिकार* – आगे क्षेत्राधिकार कहते हैं –

**सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं ।**
**लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ।।५४३।।**

**स्वस्थानसमुद्घाते उपपादे सर्वलोकमशुभानाम् ।**
**लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ।।५४३।।**

**टीका** – विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान काल में विवक्षित स्वस्थान आदि विशेषों सहित जितने आकाश में पाये जाते हैं, उसका नाम क्षेत्र है । सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं का क्षेत्र स्वस्थान में, समुद्घात में और उपपाद में सर्वलोक है । तथा पीतलेश्या आदि तीन शुभ लेश्याओं का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है, ऐसे संक्षेप से अर्थात् सामान्यपने से क्षेत्र कहा ।

अब विशेषपने से दस स्थानों में कहते हैं । वहां स्वस्थान के दो भेद हैं – एक स्वस्थानस्वस्थान, एक विहारवत्स्वस्थान । वहां विवक्षित लेश्यावाले जीव जिस नरक, स्वर्ग, नगर, ग्रामादि क्षेत्र में उत्पन्न हुये हो वह तो स्वस्थानस्वस्थान है; तथा विवक्षित लेश्यावाले जीवों का विहार करने के योग्य जो क्षेत्र हो, वह विहारवत्स्वस्थान है ।

अपने शरीर से कितनेक आत्मप्रदेशों का बाहर निकसकर (निकलकर) यथायोग्य फैलना उसे समुद्घात कहते हैं । उसके सात भेद हैं – वेदना, कषाय, वैक्रियिक,

मारणांतिक, तेजस, आहारक, केवली समुद्घात ।

वहां अत्यंत पीड़ा के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह वेदना समुद्घात है । क्रोधादि कषाय के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह कषाय समुद्घात है। विक्रिया के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह वैक्रियिक समुद्घात है । मरण होने के पहले नवीन पर्याय धारण करने के क्षेत्र तक प्रदेशों का निकसना *(फैलना)*, वह मारणांतिक समुद्घात है । अशुभरूप या शुभरूप तेजसशरीर द्वारा नगरादिक को जलाये वा भला करे, उसके साथ जो प्रदेशों का निकसना, वह तेजस समुद्घात है । प्रमत्त गुणस्थान वाले के आहारकशरीर के साथ प्रदेशों का निकसना, वह आहारक समुद्घात है । केवलज्ञानी के दंड, कपाट आदि क्रिया होते समय प्रदेशों का निकसना, वह केवली समुद्घात है । ऐसे समुद्घात के सात भेद हैं ।

पहले जो पर्याय धारण की थी उसे छोड़कर, पहले समय में अन्य पर्यायरूप होकर अंतराल में प्रवर्तना, उसे उपपाद कहते हैं । इसका एक ही भेद है । इसप्रकार ये दस स्थान हुये ।

वहां कृष्णलेश्यावाले जीवों का स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, उपपाद इन पांच पदों में क्षेत्र सर्वलोक जानना । अब इन जीवों का प्रमाण कहते हैं -

कृष्णलेश्यावालों का जो पहले प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग प्रमाण तो स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव हैं । भाग देनेपर वहां एक भाग को जुदा रखते हैं तब अवशेष जो रहे उसको बहुभाग कहते हैं, ऐसा सर्वत्र जानना। जो एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घातवाले जीव हैं । पुनश्च जो एक भाग रहा था, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं । एक भाग रहा उसे फलराशि करना, तथा एक निगोद जीव की आयु श्वास के अठारहवें भाग - उसप्रमाण अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो, उसे प्रमाणराशि करना, एक समय को इच्छाराशि करना । वहां फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने जीव उपपादवाले हैं । इस उपपादवाले जीवों के प्रमाण को मारणांतिक समुद्घात के कालप्रमाण अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो उनसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने जीव

मूलराशि के संख्यातवें भागमात्र मारणांतिक समुद्घातवाले जानने । ऐसे ये जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं, इसलिये इनका क्षेत्र सर्वलोक है । विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना। कैसे ? वह कहते हैं –

कृष्णलेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण *(पर्याप्त त्रस जीवों के ही विहार होता है, एकेन्द्रियों के नहीं, इसलिये उनका प्रमाण लिया है ।)*, पर्याप्त त्रसराशि के किंचित् कम त्रिभाग है । उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभागप्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव जानने । अवशेष रहा एक भाग अवशेष यथायोग्य स्थानों में जानना । पर्याप्त त्रस जीवों की जघन्य, मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की है, उसे हीनाधिक बराबर करनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण मध्यम अवगाहनामात्र एक जीव की अवगाहना का यहां ग्रहण किया । सो इस अवगाहना के प्रमाण को फलराशि करना, पहले जो विहारवत्स्वस्थान जीवों का प्रमाण कहा उसको इच्छाराशि करना, और एक जीव को प्रमाणराशि करना । वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण हुआ, वह विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र घनांगुल के वर्ग से असंख्यात जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । कैसे ? वह कहते हैं –

कृष्णलेश्यावाले वैक्रियिक शक्ति से युक्त जीवों का प्रमाण वैक्रियिक काययोगी जीवों के किंचित् कम त्रिभाग मात्र है । उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात में जीव हैं । अवशेष एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात में जीव प्रवर्तते हैं । ऐसा जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा, उसको हीनाधिक बराबर करके एक जीव संबंधी वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण है उससे गुणित करनेपर घनांगुल के वर्ग से गुणित असंख्यात जगत्श्रेणीमात्र प्रमाण आता है, वह वैक्रियिक

समुद्घात का क्षेत्र जानना । इन्हीं का सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक इन पांच लोक की अपेक्षा व्याख्यान करते हैं –

समस्त जो लोक वह सामान्यलोक है । मध्यलोक से नीचे, वह अधोलोक है। मध्यलोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक में एक राजू चौड़ा, लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौड़ा, लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है।

**प्रश्न** – वहां कृष्णलेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, उपपाद इनमें प्रवर्तनेवाले जीव कितने क्षेत्र में स्थित हैं ?

**वहां उत्तर** – सामान्य आदि पांच प्रकार के सर्व लोक में स्थित हैं ।

विहारवत्स्वस्थान में प्रवर्तनेवाले जीव सामान्यलोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं । और तिर्यक्लोक लाख योजन ऊंचा है और एक जीव की ऊंचाई उसके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये तिर्यक्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं । तथा मानुषोत्तर पर्वत के मध्यवर्ती जो मनुष्यलोक, उससे असंख्यातगुणा क्षेत्र में रहते हैं ।

वैक्रियिक समुद्घात में प्रवर्तनेवाले जीव सामान्यादि चार लोक, उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि वैक्रियिक समुद्घातवालों का क्षेत्र असंख्यातगुणा घनांगुल के वर्ग से गुणित जगत्श्रेणीमात्र है । ऐसे सात स्थानों में व्याख्यान किया ।

कृष्णलेश्यावालों के तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात नहीं होता, इसलिये इनका कथन नहीं किया है ।

जैसे कृष्णलेश्या का व्याख्यान किया, वैसे ही नीललेश्या, कपोतलेश्या का व्याख्यान जानना । विशेष इतना है कि जहां कृष्णलेश्या का नाम कहा है, वहां नीललेश्या या कपोतलेश्या का नाम लेना ।

अब पीतलेश्या का क्षेत्र कहते हैं । वहां प्रथम ही जीवों का प्रमाण कहते हैं । पीतलेश्यावाले जीवों का संख्या अधिकार में जो प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जानना । एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थान में जानना । पुनश्च जो एक

भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग वेदना समुद्घात में जानना। पुनश्च जो एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग कषाय समुद्घात में जानना। तथा एक भाग वैक्रियिक समुद्घात में जानना। ऐसा जीवों का प्रमाण कहा।

अब पीतलेश्या मुख्यपने भवनत्रिक आदि देवों के पायी जाती है । उनमें एक देव के शरीर की अवगाहना का प्रमाण मुख्यता से सात धनुष ऊंचा और सात धनुष के दसवें भाग मुख की चौड़ाई है प्रमाण जिसका ऐसा है । सो इसका क्षेत्रफल निकालते हैं ।

**वासोत्ति गुणो परिही वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।**
**खेत्तफलं वेहिगुणं खादफलं होदि सव्वत्थ ।।**

इस करणसूत्र से क्षेत्रफल निकालना । गोल क्षेत्र में चौड़ाई के प्रमाण से तीनगुणा तो परिधि होती है । इस परिधि को चौड़ाई के चौथे भाग से गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है । इस क्षेत्रफल को ऊंचाईरूप वेध के प्रमाण से गुणित करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है । सो यहां सात धनुष का दसवां भागमात्र चौड़ाई, उसको तीनगुणा करनेपर परिधि होती है । इसको चौड़ाई के चौथे भाग से गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है। इसको वेध सात धनुष से गुणा करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है । जो घनराशि होती है उसके गुणकार, भागहार घनरूप ही होते हैं । इसलिये यहां उसके अंगुल करने के लिये एक धनुष के छानबे अंगुल होते हैं, इसलिये जो धनुषरूप क्षेत्रफल आया उसको छानबे के घन से गुणा करना । पुनश्च यहां तो कथन प्रमाणांगुल से है और देवों के शरीर का प्रमाण उत्सेधांगुल से है । इसलिये पांच सौ के घन का भाग देना । ऐसा करनेपर प्रमाणरूप घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण एक देव के शरीर की अवगाहना हुयी । इससे पहले जो स्वस्थानस्वस्थान में जीवों का प्रमाण कहा था उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान में जानना ।

वेदना समुद्घात में वा कषाय समुद्घात में आत्मप्रदेश मूल शरीर से बाहर निकसे, तो एक प्रदेश को रोके या दो प्रदेशमात्र क्षेत्र को रोके, ऐसे एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये यदि उत्कृष्ट क्षेत्र को रोके, तो चौड़ाई में मूल शरीर से तीनगुणा क्षेत्र रोकता है परंतु ऊंचाई मूल शरीर प्रमाण ही रहती है । सो इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर मूल शरीर के क्षेत्रफल से नौ गुणा क्षेत्र हुआ । इसप्रकार जघन्य एक प्रदेश

और उत्कृष्ट मूल शरीर से नौ गुणा क्षेत्र हुआ । इसे हीनाधिक बराबर करनेपर एक जीव के मूल शरीर से साढ़े चार गुणा क्षेत्र हुआ; सो शरीर का प्रमाण पहले घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण कहा था, उसको साढ़े चार गुणा करनेपर एक जीव संबंधी क्षेत्र हुआ । इससे वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है । पुनश्च कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च विहार करनेवाले देवों के मूल शरीर से बाह्य आत्मा के प्रदेश फैलनेपर, एक जीव की अपेक्षा वे प्रदेश संख्यात योजन प्रमाण लम्बा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र रोकते हैं, सो इसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल हुआ। इससे पहले जो विहारवत्स्वस्थान में जीवों का प्रमाण कहा था उसको गुणा करनेपर सर्व जीवों संबंधी विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र का प्रमाण आता है । यहां ऐसा अर्थ जानना - देवों के मूल शरीर तो अन्य क्षेत्र में रहते हैं और विहार द्वारा विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्र में रहता है । वहां उन दोनों के बीच आत्मा के प्रदेश सूच्यंगुल के संख्यातवें भागमात्र प्रदेश ऊंचे, चौड़े फैलते हैं । तथा यहां मुख्यता की अपेक्षा संख्यात योजन लम्बे कहे हैं । पुनश्च देव अपनी अपनी इच्छा से हाथी, घोड़ा इत्यादि रूप विक्रिया करते हैं उसकी अवगाहना एक जीव की अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है । इससे पहले जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा उसको गुणा करनेपर सर्व जीवों संबंधी वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण कहा ।

पुनश्च पीतलेश्यावालों में व्यंतरदेव बहुत मरते हैं, इसलिये यहां व्यंतरों की मुख्यता से मारणांतिक समुद्घात कहते हैं । व्यंतरदेवों का जो प्रमाण है, उसको व्यंतरों की मुख्यपने दस हजार वर्ष आदि संख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के जितने समय हैं उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जीव एक समय में मरण को प्राप्त होते हैं। इन मरनेवाले जीवों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भागप्रमाण जीवों के ऋजुगति अर्थात् समरूप सीधीगति होती है *(बिना मोड़वाली अविग्रहगति)*। तथा बहुभागप्रमाण जीवों के विग्रहगति अर्थात् वक्रता-मोड़ सहित परलोक को गति होती है । इन विग्रहगति जीवों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर, वहां एक भागप्रमाण जीवों के मारणांतिक समुद्घात नहीं होता । परंतु बहुभागप्रमाण जीवों के मारणांतिक समुद्घात होता है । इस मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण

को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये । वहां बहुभागप्रमाण समीप थोड़े से क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं और एक भागप्रमाण दूर बहुत क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । सो एक समय में दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवों का यह प्रमाण कहा और मारणांतिक समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है । इसलिये अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो, उनसे उस प्रमाण को गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उतने इकट्ठे हुये *(सब मिलकर)* दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव जानने। वहां एक जीव के दूर मारणांतिक समुद्घात में शरीर से बाहर प्रदेश फैलते हैं, वे मुख्यपने एक राजू के संख्यातवें भागप्रमाण लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े और ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं । इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से जगत्श्रेणी के संख्यातवें भाग को गुणा करनेपर जो हो, उतना क्षेत्र हुआ । इससे दूर मारणांतिक जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर सब जीवों संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र होता है । अन्य मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र अल्प है इसलिये मुख्य ग्रहण उसी का किया ।

तेजस समुद्घात में शरीर से बाहर प्रदेश निकसते हैं वे बारह योजन लम्बे, नौ योजन चौड़े, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, सो इनका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे तेजस समुद्घात करनेवाले जीवों का प्रमाण संख्यात है, उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना तेजस समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

आहारक समुद्घात में एक जीव के शरीर से बाहर निकसे हुये प्रदेश संख्यात योजन प्रमाण लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े, ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे आहारक समुद्घातवाले जीवों का जो संख्यात प्रमाण है, उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना आहारक समुद्घात में क्षेत्र जानना । मूल शरीर से निकसकर आहारकशरीर जहां जाता है, वहां तक की लम्बी आत्मप्रदेशों की श्रेणी सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े और ऊंचे आकाश में होती है ऐसा भावार्थ जानना । ऐसा ही मारणांतिक समुद्घातादि में भी भावार्थ जान लेना ।

**मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।**
**तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ।।५४४।।**

**म्रियते असंख्येयं तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति ।**
**तस्यासंख्यं दूरे उपपादे तस्य खलु असंख्यम् ।।५४४।।**

**टीका** - इस सूत्र का अभिप्राय उपपादक्षेत्र लाने का है । वहां पीतलेश्यावाले सौधर्म-ईशानवर्ती जीव मध्यलोक से दूर क्षेत्रवर्ती हैं, उनके कथन में क्षेत्र का प्रमाण अधिक आता है, इस बहुत प्रमाण में अल्प प्रमाण गर्भित करते हैं । इसलिये उनकी मुख्यता से उपपादक्षेत्र का कथन करते हैं ।

सौधर्म-ईशान स्वर्ग के वासी देव घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं । इस प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भागप्रमाण एक एक समय में मरनेवाले जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये वहां बहुभागप्रमाण विग्रहगति करनेवालों का प्रमाण होता है । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवों का प्रमाण होता है।

इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर, एक भागप्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को, द्वितीय दीर्घ दंड में स्थित मारणांतिक समुद्घात जिसका पहले हुआ हो ऐसी उपपादता से युक्त जीवों का प्रमाण लाने के लिये, पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग प्रमाण उपपाद जीवों का प्रमाण है । वहां तिर्यंच उपजने की मुख्यता से एक जीव संबंधी प्रदेश फैलने की अपेक्षा डेढ़ राजू लम्बा, संख्यात सूच्यंगुलप्रमाण चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र होता है । इसका घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल से डेढ़ राजू को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । इससे उपपाद जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना उपपाद में क्षेत्र जानना ।

केवली समुद्घात इस लेश्या में हैं नहीं, इसलिये कथन नहीं किया । ऐसे पीतलेश्या में क्षेत्र है ।

आगे पद्मलेश्या में क्षेत्र कहते हैं - संख्याधिकार में पद्मलेश्यावाले जीवों का जो प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जानना । अवशेष एक भाग रहा, उसे संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थान में जानना । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग

वेदना समुद्घात में जानना । अवशेष एक भाग रहा वह कषाय समुद्घात में जानना। ऐसा जीवों का प्रमाण कहा । अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवों की अवगाहना का प्रमाण बहुत है, इसलिये उनकी मुख्यता से कथन करते हैं ।

वहां स्वस्थानस्वस्थान में और विहारवत्स्वस्थान में एक तिर्यंच जीव की अवगाहना मुख्यपने एक कोस लम्बी तथा उसके नौवें भाग मुख का विस्तार, सो इसका क्षेत्रफल **'वासो तिगुणो परिही'** इत्यादि सूत्र से करनेपर संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है । इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान में क्षेत्र होता है । तथा विहारवत्स्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र होता है । पुनश्च पूर्वोक्त तिर्यंच शरीर की अवगाहना से पूर्वोक्त प्रकार साढ़े चार गुणा वेदना और कषाय समुद्घात में एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र है । इससे पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है, कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार-माहेन्द्र में बहुत हैं, इसलिये उनकी अपेक्षा कथन करते हैं - सनत्कुमार-माहेन्द्र में देवों का प्रमाण जगत्श्रेणी के ग्यारहवें वर्गमूल का भाग जगत्श्रेणी को देनेपर जो हो, उतना है । इस राशि को संख्यात का भाग देनेपर बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव जानने। अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसप्रमाण वैक्रियिक समुद्घात में जीव जानने । इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को एक जीव संबंधी विक्रियारूप हाथी घोड़ोंरूप संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, वही वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च मारणांतिक समुद्घात में तथा उपपाद में भी क्षेत्र सनत्कुमार-माहेन्द्र की अपेक्षा बहुत है । इसलिये सनत्कुमार-माहेन्द्र की अपेक्षा कथन करते हैं -

**मरदि असंखेज्जिदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।**
**तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ।।**

सनत्कुमार-माहेन्द्रवासी जीवों का जो प्रमाण कहा उसको असंख्य अर्थात् पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भाग प्रमाण जीव प्रतिसमय मरण को प्राप्त होते हैं । उस राशि को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवालों का प्रमाण है । इस राशि को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भागप्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भागप्रमाण उपपाद के दंड में स्थित जीव हैं । वहां एक जीव की अपेक्षा मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र तीन राजू लम्बा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागमात्र चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र है। इन सनत्कुमार-माहेन्द्रवासी देवों द्वारा किये हुये मारणांतिक दंड का घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से तीन राजू को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना है । इससे दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा था, उसको गुणा करनेपर मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण होता है । पुनश्च उपपाद में तिर्यंच जीवों द्वारा सनत्कुमार-माहेन्द्र प्रति किया हुआ उपपादरूप दंड, वह तीन राजू लम्बा, संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़ा और ऊंचा है । उसका क्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल से गुणित तीन राजूप्रमाण एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र होता है । इससे उपपादवालों के प्रमाण को गुणा करनेपर उपपाद में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च तेजस और आहारक समुद्घात में क्षेत्र जैसा पीतलेश्या के कथन में किया था, वैसे यहां भी संख्यात घनांगुल से संख्यात जीवों को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । केवलीसमुद्घात इस लेश्या में नहीं होता, ऐसे पद्मलेश्या का क्षेत्र कहा ।

आगे शुक्ललेश्या में क्षेत्र कहते हैं - संख्या अधिकार में जो शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कहा उसको संख्यात का *(छपी पुस्तक में पल्य के असंख्यातवें भाग से ऐसा हर बार कहा है जो घटित नहीं होता । तथा पं. टोडरमलजी के जीवकाण्ड के संदृष्टि अधिकार पृ. १६८ के आधार से भी संख्यात का ही भागहार है । पीत और पद्मलेश्या में भी हमने संख्यात का भाग देकर बहुभाग बहुभाग ग्रहण किया था,*

*सो यहां भी वही है ।)* भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा, उसप्रमाण वैक्रियिक समुद्घातवाले जीव हैं । वहां शुक्ललेश्यावाले देवों की मुख्यता से एक जीव के शरीर की अवगाहना तीन हाथ ऊंची, इसके दसवें भाग प्रमाण मुख की चौड़ाई, इसका **वासो त्ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र द्वारा क्षेत्रफल निकालनेपर घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण होता है, इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च मूल शरीर की अवगाहना से साढ़े चार गुणा एक जीव के वेदना और कषाय समुद्घात में क्षेत्र है । इस साढ़े चार गुणा घनांगुल के संख्यातवें भाग से वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर, वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है । तथा कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च एक देव के विहार करते हुये अपने मूल शरीर से बाहर निकलकर उत्तर विक्रिया द्वारा उत्पन्न शरीर तक आत्मा के प्रदेश संख्यात योजन लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौड़े और ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च अपने अपने योग्य विक्रियारूप बनाये गये हाथी आदि शरीरों की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणित करनेपर, वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च शुक्ललेश्या आनतादि *(तेरहवें स्वर्ग से आगे)* देवों में पायी जाती है, सो वहां से मुख्यपने आरण-अच्युत *(पंद्रहवां-सोलहवां स्वर्ग)* की अपेक्षा से मध्यलोक छह राजू है । इसलिये मारणांतिक समुद्घात में एक जीव के प्रदेश छह राजू लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौड़े, ऊंचे होते हैं, सो इसका जो क्षेत्रफल एक

जीव संबंधी हुआ उसको संख्यात से गुणा करनेपर मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र होता है । संख्यात से गुणा किया क्योंकि आनतादि से मरकर मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये मारणांतिक समुद्घातवाले संख्यात ही जीव हैं ।

पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में जैसे पद्मलेश्या में क्षेत्र कहा था, वैसे यहां भी जानना ।

अब केवली समुद्घात में क्षेत्र कहते हैं – केवल (केवली) समुद्घात चार प्रकार का है - दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण । वहां दंड दो प्रकार का – एक स्थिति दंड, एक उपविष्ट दंड । कपाट चार प्रकार का – पूर्वाभिमुख स्थितकपाट, उत्तराभिमुख स्थितकपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्टकपाट, उत्तराभिमुख उपविष्टकपाट । प्रतर और लोकपूरण एक-एक ही प्रकार का है ।

वहां स्थितिदंड समुद्घात में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक की ऊंचाई कुछ कम चौदह राजू प्रमाण है, उसप्रमाण तो लम्बे तथा बारह अंगुल प्रमाण चौड़े गोल आकार होते हैं । सो **वासो त्ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र द्वारा इसका क्षेत्रफल दो सौ सोलह प्रतरांगुल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना है । क्योंकि बारह अंगुल गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल एक सौ आठ प्रतरांगुल होता है *(१२×३=३६, ३६×$\frac{१२}{४}$ =१०८)*, इसको ऊंचाई दो जगत्श्रेणी *(७ राजू=१ जगत्श्रेणी, १४ राजू=२ जगत्श्रेणी)* से गुणा करनेपर इतना ही होता है *(१०८ प्रतरांगुल×२ जगत्श्रेणी=२१६ प्रतरांगुल×जगत्श्रेणी)* पुनश्च एक समय में इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं इसलिये इसको चालीस से गुणा करनेपर आठ हजार छह सौ चालीस प्रतरांगुलों से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना स्थितदंड में क्षेत्र होता है । इस स्थितिदंड के क्षेत्र को नौ गुणा करनेपर उपविष्टदंड में क्षेत्र होता है, क्योंकि स्थितिदंड में बारह अंगुल प्रमाण चौड़ाई कही, यहां उससे तीनगुणी छत्तीस अंगुल चौड़ाई है, सो क्षेत्रफल में नौ गुणा क्षेत्रफल हुआ, इसलिये नौ गुणा किया । ऐसा करनेपर सतहत्तर हजार सात सौ साठ प्रतरांगुलों से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हुआ उतना उपविष्टदंड में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च पूर्वाभिमुख स्थितकपाट समुद्घात में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोकप्रमाण तो लम्बे होते हैं, सो कुछ कम चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे होते हैं

और उत्तर दक्षिण दिशा में लोक की चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं । सो उत्तर दक्षिण दिशा में लोक सर्वत्र सात राजू चौड़ा है । इसलिये सात राजू प्रमाण चौड़े होते हैं। तथा बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिम में ऊंचे होते हैं, सो इसका क्षेत्रफल भुज, कोटि, वेध का परस्पर गुणा करनेपर चौबीस अंगुल गुणा जगत्प्रतर हुआ । *(१२अंगुल×१४ राजू × ७ राजू = १२अंगुल × २जगत्श्रेणी × जगत्श्रेणी = २४अंगुल × जगत्प्रतर)* इसको एक समय में इस समुद्‌घातवाले जीवों का प्रमाण चालीस है, सो चालीस से गुणा करनेपर नौ सौ साठ सूच्यंगुलों से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना पूर्वाभिमुख स्थितकपाट में क्षेत्र होता है । पुनश्च स्थितकपाट में बारह अंगुल की ऊंचाई कही, उपविष्टकपाट में तीनगुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई होती है । इसलिये पूर्वाभिमुख स्थितकपाट के क्षेत्र से तीनगुणा अट्ठाइस सौ अस्सी सूच्यंगुलों से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना पूर्वाभिमुख उपविष्टकपाट में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च उत्तराभिमुख स्थितकपाट में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोकप्रमाण लम्बे होते हैं, सो कुछ कम चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे होते हैं । तथा पूर्व पश्चिम दिशा में लोक की चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं । सो लोक अधोलोक के नीचे सात राजू चौड़ा है और अनुक्रम से घटता हुआ मध्यलोक में एक राजू चौड़ा है । इसके क्षेत्रफल के लिये सूत्र कहते हैं – **मुहभूमी जोग दले पदगुणिदे पदधणं होदि** । **मुख** अर्थात् अंत, **भूमि** अर्थात् आदि, इनका **जोग** अर्थात् जोड़, उसका **दल** अर्थात् आधा, उसका **पद** अर्थात् गच्छ का प्रमाण, उसको गुणा करनेपर **पदधन** अर्थात् सर्व गच्छ का मिलाया हुआ प्रमाण होता है । यहां मुख एक राजू, भूमि सात राजू जोड़नेपर आठ हुये, उसका आधा चार उसको अधोलोक की ऊंचाई सात राजू इसलिये गच्छ का प्रमाण सात राजू से गुणित करनेपर अट्ठाइस राजू प्रमाण हुआ, उतना अधोलोक संबंधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना ।

मध्य में लोक एक राजू चौड़ा, बढ़ते बढ़ते ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू हुआ । सो यहां मुख एक राजू, भूमि पांच राजू मिलानेपर छह हुये, उसका आधा तीन, इसको ब्रह्मस्वर्ग साढ़े तीन राजू ऊंचा इसलिये गच्छ का प्रमाण साढ़े तीन राजू से गुणित करनेपर साढ़े दस राजू आधे ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल हुआ । पुनश्च ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू, वह घटते घटते ऊपर एक राजू का रह गया, सो यहां भी मुख एक राजू, भूमि पांच राजू, मिलानेपर छह राजू हुये, उसका आधा तीन, उसको

ब्रह्मस्वर्ग के ऊपर लोक साढ़े तीन राजू है वही गच्छ हुआ उससे गुणा करनेपर आधे ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल साढ़े दस राजू होता है । इसतरह ऊर्ध्वलोक, अधोलोक का सर्व क्षेत्रफल जोड़नेपर जगत्प्रतर हुआ (२८ प्रतरराजू + २१ प्रतरराजू = ४९ राजूप्रतर), सो ऐसे लम्बाई, चौड़ाई से तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश होते हैं । तथा बारह अंगुल प्रमाण उत्तर दक्षिण दिशा में ऊंचे होते हैं । सो जगत्प्रतर को बारह सूच्यंगुलों से गुणा करनेपर एक जीव संबंधी क्षेत्र बारह अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण होता है । इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं । इसलिये चालीस से उस क्षेत्र को गुणा करनेपर चार सौ अस्सी सूच्यंगुलों से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख स्थितकपाट में क्षेत्र होता है । पुनश्च स्थिति में बारह अंगुल की ऊंचाई कही, उपविष्ट में उससे तीन गुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई है । इसलिये पूर्वोक्त प्रमाण से तीन गुणा चौदह सौ चालीस सूच्यंगुलों से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च प्रतर समुद्घात में तीन वातवलय बिना सर्व लोक में प्रदेश व्याप्त होते हैं । इसलिये तीन वातवलय का क्षेत्रफल लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है । सो यह प्रमाण लोक के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष रहे उतना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च लोकपूरण में सर्व लोकाकाश में प्रदेश व्याप्त होते हैं, इसलिये लोकप्रमाण एक जीव संबंधी लोकपूरण समुद्घात में क्षेत्र जानना । सो प्रतर, लोकपूरण के बीस जीव तो करनेवाले और बीस जीव तो समेटनेवाले ऐसे एक समय में चालीस जीव पाये जाते हैं । परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र में ही एकक्षेत्रावगाहरूप से सर्व पाये जाते हैं, इसलिये क्षेत्र उतना ही जानना । दंड और कपाट में भी बीस जीव करनेवाले, बीस समेटनेवाले की अपेक्षा चालीस जीव हैं, सो ये जीव जुदे जुदे क्षेत्र को भी रोकते हैं, इसलिये दंड और कपाट में चालीस का गुणकार कहा । जीवों का यह प्रमाण उत्कृष्टता की अपेक्षा है ।

## सुक्कस्स समुग्घादे असंखभागा य सव्वलोगो य ।

**शुक्लायाः समुद्घाते असंख्याभागाश्च सर्वलोकश्च ।**

**टीका –** इस आधे सूत्र द्वारा शुक्ललेश्या का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागों

में से एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण या सर्व लोकप्रमाण कहा है, वह केवली समुद्घात की अपेक्षा जानना । पुनश्च उपपाद में मुख्यपने से अच्युत स्वर्ग की अपेक्षा एक जीव के प्रदेश छह राजू लम्बे और संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़े और ऊंचे होते हैं । सो इस क्षेत्रफल को अच्युत स्वर्ग में एक समय में संख्यात मरते हैं इसलिये वहां संख्यात ही उपजते हैं, इसलिये संख्यात से गुणा करनेपर जो प्रमाण हुआ, उतना उपपाद में क्षेत्र जानना । यहां भी पूर्वोक्त प्रकार से पांच प्रकार के लोक की अपेक्षा से जैसा भागहार गुणकार होता है वैसा जान लेना । ऐसे शुक्ललेश्या में क्षेत्र कहा।

यहां छह लेश्याओं के क्षेत्र का वर्णन दस स्थानों में किया, वहां ऐसा जानना कि जिस अपेक्षा से क्षेत्र का प्रमाण अधिक आता है उस अपेक्षा से मुख्यपने क्षेत्र का वर्णन किया है । वहां संभवनेवाला अन्य अल्प क्षेत्र अधिक जान लेना, ऐसे ही आगे स्पर्शन में भी अर्थ समझना । इति क्षेत्राधिकारः (क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ।)

***१२) स्पर्शनाधिकार*** – आगे स्पर्शनाधिकार साढ़े छह गाथाओं द्वारा कहते हैं–

## फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ।।५४५।।

**स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानाम् ।।५४५।।**

**टीका** – क्षेत्र में तो वर्तमान काल में जितना क्षेत्र रोकता है उसीका ग्रहण किया है । परंतु यहां *(स्पर्शन में)* वर्तमान काल में जितना क्षेत्र रोकता है उससहित अतीत काल में स्वस्थानादि विशेषण के धारक जीव जितना क्षेत्र रोककर आये हो, उस क्षेत्र ही का नाम स्पर्शन जानना । सो कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या का स्पर्श स्वस्थान में, समुद्घात में और उपपाद में सामान्यपने सर्व लोक जानना । विशेष से दस स्थानों में कहते हैं ।

वहां कृष्णलेश्यावाले जीवों के स्वस्थानस्वस्थान में; वेदना, कषाय और मारणांतिक समुद्घात में और उपपाद में सर्व लोकप्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान में एक राजू लम्बा, चौड़ा और संख्यात सूच्यंगुलप्रमाण ऊंचा तिर्यक्लोक क्षेत्र है । इसका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलों से गुणित प्रतरराजू प्रमाण हुआ, वही विहारवत्स्वस्थान में स्पर्श जानना । क्योंकि कृष्णलेश्यावाले गमनक्रियायुक्त त्रस जीव तिर्यक्लोक में ही पाये जाते हैं ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में मेरुगिरि के मूल से लेकर सहस्रार नामक स्वर्ग तक ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लम्बे, चौड़े क्षेत्र में वायुकायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादितरूप भरे हुये हैं । वायुकायिक जीवों के विक्रिया पायी जाती है, सो अतीत काल की अपेक्षा वहां सर्वत्र विक्रिया का सद्भाव होता है । ऐसा कोई क्षेत्र उसमें बाकी नहीं रहा, जहां विक्रियारूप नहीं प्रवर्ता । इसलिये एक राजू लम्बा, चौड़ा और पांच राजू ऊंचा क्षेत्र हुआ, उसका क्षेत्रफल लोक के संख्यातवें भागप्रमाण हुआ, वही वैक्रियिक-समुद्घात में स्पर्श जानना । *(१राजू × १राजू × ५राजू = ५ घनराजू । लोक का क्षेत्रफल ३४३ घनराजू है उसका वह संख्यातवां भाग होता है ।)*

पुनश्च तेजस, आहारक और केवलीसमुद्घात इस लेश्या में होता ही नहीं । यहां भी पांच प्रकार के लोक का स्थापन करके यथासंभव गुणकार भागहार जानना। जैसे कृष्णलेश्या में कथन किया वैसे ही नीललेश्या, कपोतलेश्या में भी जानना ।

आगे पीतलेश्या में कहते हैं -

**तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु ।**
**अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ।।५४६।।**

**तैजसश्च स्वस्थाने लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु ।**
**अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ।।५४६।।**

**टीका** - पीतलेश्या के स्वस्थान में स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा तो लोक के असंख्यातवें भागमात्र जानना । विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना ।

**एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूण ।**
**उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ।।५४७।।**

**एवं तु समुद्घाते नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः ।**
**उपपादे प्रथमपदं द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनम् ।।५४७।।**

**टीका** - इसीप्रकार समुद्घात में विहारवत्स्वस्थानवत् कुछ कम त्रसनाली के चौदह भागों में से आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा

कुछ कम त्रसनाली के चौदह भागों में से नौ भागप्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च उपपाद में त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ भागप्रमाण स्पर्श जानना । ऐसे सामान्यपने पीतलेश्या का तीनों स्थानों में स्पर्श कहा ।

पुनश्च विशेष से दस स्थानों में स्पर्श कहते हैं । तिर्यक्लोक एक राजू लम्बा, चौड़ा है । उसमें लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयंभूरमणसमुद्र इन तीन समुद्रों में जलचर जीव पाये जाते हैं । अन्य समुद्रों में जलचर जीव नहीं है । सो जिन समुद्रों में जलचर जीव नहीं हैं उन सर्व समुद्रों का जितना क्षेत्रफल हो, उसे तिर्यक्लोकरूप क्षेत्र में से घटानेपर, अवशेष जितना क्षेत्र रहता है, उतना पीत, पद्म, शुक्ल लेश्याओं का स्वस्थानस्वस्थान में स्पर्श जानना । क्योंकि एकेन्द्रियादिकों के शुभलेश्या का अभाव है । वह कहते हैं –

जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमणसमुद्र तक सर्व द्वीप–समुद्र दुगुणे दुगुणे विस्तारवाले हैं । वहां जम्बूद्वीप लाख योजन विस्तारवाला है । इसका सूक्ष्म तारतम्यरूप क्षेत्रफल कहते हैं ।

**सत्त णव सुण्ण पंच य, छण्णव चउरेक पंच सुण्णं च ।**

इसका अर्थ सात, नौ, शून्य, पांच, छह, नौ, चार, एक, पांच, शून्य इतने अंकों से जो प्रमाण हुआ उतना जम्बूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल है (७९०५६९४१५०)। सो इतनेमात्र एक खण्ड की कल्पना की । पुनश्च ऐसे ऐसे खण्ड लवणसमुद्र में कल्पित करेंगे तो चौबीस (२४) होते हैं, धातकीखण्ड में एक सौ चौवालीस (१४४) होते हैं, कालोदकसमुद्र में छह सौ बहत्तर (६७२) होते हैं, पुष्करद्वीप में अट्ठाइस सौ अस्सी (२८८०) होते हैं, पुष्करसमुद्र में ग्यारह हजार नौ सौ चार (११९०४) होते हैं, वारुणीद्वीप में अड़तालीस हजार तीन सौ चौरासी (४८३८४) होते हैं, वारुणी समुद्र में एक लाख पंचानबे हजार बहत्तर (१९५०७२) होते हैं, क्षीरवरद्वीप में सात लाख तिरासी हजार तीन सौ साठ (७८३३६०) होते हैं, क्षीरवरसमुद्र में इकतीस लाख उनतालीस हजार पांच सौ चौरासी (३१३९५८४) होते हैं । ऐसे स्वयंभूरमणसमुद्र तक खण्डसाधन करना। इस खण्डों के प्रमाण का ज्ञान होने के लिये सूत्र कहते हैं –

**बाहिर सूईवग्गं अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।**
**जंबूवासविहत्ते तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ।।**

**टीका** – बाह्य के सूची के वर्ग में से अभ्यंतर सूची के वर्ग का प्रमाण घटानेपर जो प्रमाण रहता है उसको जम्बूद्वीप के व्यास के वर्ग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जम्बूद्वीप समान खण्ड जानना । अंत से लेकर उसके सन्मुख अंत तक जितना सीधा क्षेत्र हो उसको बाह्य सूची कहते हैं *(बाहरी व्यास – Outer diameter)*। तथा आदि से लेकर उसके सन्मुख आदि तक जितना सीधा क्षेत्र हो, उसको अभ्यंतर सूची कहते हैं *(अंदरुनी व्यास–inner diameter)* । सो यहां लवणसमुद्र में उदाहरण द्वारा कहते हैं –

लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, उसका वर्ग करनेपर लाख गुणा पच्चीस लाख हुआ । उसी की अभ्यंतर सूची एक लाख योजन, उसका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, उसे घटानेपर अवशेष रहे लाख गुणा चौबीस लाख, उसको जम्बूद्वीप का व्यास लाख योजन, उसका वर्ग लाख गुणा लाख योजन उसका भाग देनेपर चौबीस रहे । सो जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्ड लवणसमुद्र में जानने । इसी प्रकार सर्व द्वीप समुद्रों में साधन करना । इस साधन के लिये अन्य भी प्रकार कहते हैं –

**रूऊण सला बारस सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि ।**
**बाहिरसूइ सलागा कदी तदंताखिला खंडा ।।**

**टीका** – यहां व्यास में जितने लाख कहे हो उतने प्रमाण शलाका जानना। सो एक कम शलाका को बारह शलाका से गुणा करनेपर जम्बूद्वीपप्रमाण वलयखण्ड होते हैं । जैसे लवणसमुद्र में व्यास दो लाख योजन, इसलिये शलाका का प्रमाण दो, उसमें से एक घटानेपर आया एक, उसको बारह शलाकाओं का प्रमाण चौबीस से गुणा करनेपर, चौबीस खण्ड होते हैं । पुनश्च बाह्य सूची संबंधी शलाका के वर्गप्रमाण वहां तक के खण्ड होते हैं । जैसे लवणसमुद्र में बाह्य सूची पांच लाख योजन है। इसलिये शलाका का प्रमाण पांच है, उसका वर्ग पच्चीस, वही लवणसमुद्र तक के सर्व खण्डों का प्रमाण होता है । जम्बूद्वीप में एक खण्ड और लवणसमुद्र में चौबीस खण्ड, मिलकर पच्चीस खण्ड होते हैं । पुनश्च और भी विधान कहते हैं –

**बाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिट्ठावासहदा ।**
**इकलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि ।।१।।**

**टीका** – बाह्य सूची में से वलय का व्यास घटानेपर जो रहे, उसको चौगुणा

व्यास से गुणा करके, एक लाख के वर्ग का भाग देनेपर जम्बूद्वीप के समान गोलाकार खण्डों का प्रमाण होता है ।

उदाहरण – जैसे लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, उसमें से व्यास दो लाख योजन घटानेपर तीन लाख योजन हुये, इसको चौगुणा व्यास आठ लाख योजन से गुणा करनेपर लाख गुणा चौबीस लाख हुये । इसको एक लाख के वर्ग का भाग देनेपर चौबीस आते हैं, उतने ही जम्बूद्वीप समान लवणसमुद्र में खण्ड हैं। इसतरह सूत्रों द्वारा साधन करके खण्ड ज्ञान करना ।

पुनश्च यहां द्वीप संबंधी खण्डों को छोड़कर सर्व समुद्र संबंधी खण्डों का ही ग्रहण करेंगे, तब जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्डों का भाग समुद्रखण्डों को देनेपर जो प्रमाण आयेगा, उतने सर्व समुद्रों में लवणसमुद्र समान खण्ड जानने । सो लवणसमुद्र के खण्डों को चौबीस का भाग देनेपर एक आया, सो लवणसमुद्र समान एक खण्ड हुआ । कालोदकसमुद्र के छह सौ बहत्तर खण्डों को चौबीस का भाग देनेपर अट्ठाइस आये, सो कालोदकसमुद्र में लवणसमुद्र समान अट्ठाइस खण्ड होते हैं । ऐसे ही पुष्करसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर चार सौ छानबे खण्ड होते हैं । वारुणीसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर आठ हजार एक सौ अट्ठाइस खण्ड होते हैं । क्षीरसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर एक लाख तीस हजार आठ सौ सोलह खण्ड होते हैं। ऐसे ही स्वयंभूरमणसमुद्र तक जानना । उसे जानने का उपाय कहते हैं –

यह लवणसमुद्र समान खण्डों का प्रमाण लाने की रचना है –

| धनराशि | | | | | ऋणराशि | | | | | समुद्र |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २ | १६ | १६ | १६ | १६ | १ | ४ | ४ | ४ | ४ | क्षीरवर |
| २ | १६ | १६ | १६ | | १ | ४ | ४ | ४ | | वारुणीवर |
| २ | १६ | १६ | | | १ | ४ | ४ | | | पुष्कर |
| २ | १६ | | | | १ | ४ | | | | कालोद |
| २ | | | | | १ | | | | | लवणोद |

**टीका** – दो आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना और एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना । धन में से ऋण घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने लवणसमुद्र समान खण्ड जानने ।

उदाहरण कहते हैं – प्रथमस्थान में धन दो, ऋण एक; दो में से एक घटानेपर एक रहा सो लवणसमुद्र में एक खण्ड हुआ । दूसरे स्थान के दो को सोलह गुणा कीजिये, तब बत्तीस तो धन होते हैं और एक को चार गुणा कीजिये, तब चार ऋण हुये । बत्तीस में से चार घटानेपर अट्ठाइस हुये, सो दूसरे कालोदक समुद्र में लवणसमुद्र समान अट्ठाइस खण्ड हैं । पुनश्च तीसरे स्थान में बत्तीस को सोलह से गुणा करनेपर पांच सौ बारह धन होते हैं, और चार को चौगुणा करनेपर सोलह ऋण होते हैं । पांच सौ बारह में से सोलह घटानेपर चार सौ छानबे रहे, सो इतने ही तीसरे पुष्करसमुद्र में लवणसमुद्र समान खण्ड जानने । ऐसे स्वयंभूरमणसमुद्र तक जानना।

सो अब यहां जलचर रहित समुद्रों का क्षेत्रफल कहते हैं –

द्वीप समुद्रों का जो प्रमाण है उसको आधा करना क्योंकि यहां समुद्रों का ही ग्रहण है, उसमें से जलचर सहित तीन समुद्रों को घटानेपर, जलचर रहित समुद्रों का प्रमाण होता है, उसे यहां गच्छ जानना । सो दो आदि सोलह सोलह गुणा धन कहा था सो धन का जलचर रहित समुद्रों के धन में कितना क्षेत्रफल हुआ? वह कहते हैं –

**पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे ।**
**रूऊणगुणेणहिये मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं ।।**

इस सूत्र द्वारा गुणकाररूप राशि का जोड़ होता है । **इसका अर्थ** – गच्छ प्रमाण जो गुणकार उसको परस्पर गुणा करके एक घटाइये, पुनश्च एक कम गुणकार के प्रमाण का भाग दीजिये, पुनश्च मुख जो आदिस्थान उससे गुणिये, तब गुणकाररूप राशि में सर्व जोड़ होता है ।

सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाते हैं । जैसे – आदिस्थान में दस और पश्चात् चौगुणा चौगुणा बढ़ता ऐसे पांच स्थानों में जो जो प्रमाण हुआ, उन सब का जोड़ देनेपर कितना हुआ ? वह कहते हैं –

यहां गच्छ का प्रमाण पांच और गुणकार का प्रमाण चार । सो पांच जगह चार चार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर एक हजार चौबीस हुये, उसमें से एक घटानेपर एक हजार तेइस हुये । इसको एक कम गुणकार का प्रमाण तीन का भाग देनेपर तीन सौ इकतालीस हुये । आदिस्थान का प्रमाण दस उससे इसको गुणा करनेपर चौंतीस

सौ दस (३४१०) आये, वही सब का जोड़ जानना । कैसे ? पांच स्थानों में ऐसा प्रमाण है – १०।४०।१६०।६४०।२५६०। इनका जोड़ चौंतीस सौ दस ही होता है। ऐसे अन्यत्र भी जानना ।

सो इसी सूत्र से यहां गच्छ का प्रमाण तीन कम द्वीपसागर के प्रमाण का आधा प्रमाण है । सो सर्व द्वीप समुद्रों का प्रमाण कितना है ? वह कहते हैं – एक राजू के जितने अर्धच्छेद हैं, उनमें से लाख योजन के अर्धच्छेद और एक योजन के सात लाख अड़सठ हजार अंगुल उनके अर्धच्छेद और सूच्यंगुल के अर्धच्छेद और मेरु के मस्तक पर प्राप्त हुआ एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटानेपर जितना अवशेष प्रमाण रहा उतने सर्व द्वीपसमुद्र हैं । अब यहां गुणोत्तर का प्रमाण सोलह, सो गच्छ प्रमाण गुणोत्तरों को परस्पर गुणा करना । वहां प्रथम एक राजू के अर्धच्छेद राशि के आधे प्रमाणमात्र जगह सोलह सोलह मांडकर परस्पर गुणा करनेपर राजू का वर्ग होता है । सो कैसे ? वह कहते हैं –

विवक्षित गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही सम्पूर्ण विवक्षित गच्छ प्रमाणमात्र विवक्षित गुणकार का वर्गमूल मांडकर परस्पर गुणा करनेपर प्रमाण होता है । जैसे विवक्षित गच्छ आठ, उसका आधा प्रमाण चार, सो चार जगह विवक्षित गुणकार नौ, नौ मांडकर परस्पर गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं, वही विवक्षित गच्छमात्र आठ जगह विवक्षित गुणकार नौ का वर्गमूल तीन, तीन मांडकर परस्पर गुणा करनेपर पैंसठ सो इकसठ होते हैं । ऐसे ही यहां विवक्षित गच्छ एक राजू के अर्धच्छेद, उसके आधे प्रमाणमात्र जगह सोलह, सोलह मांडकर परस्पर गुणित करनेपर जो प्रमाण होता है वही राजू के अर्धच्छेद मात्र सोलह का वर्गमूल चार, चार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर प्रमाण होता है । सो राजू के अर्धच्छेद मात्र जगह दो मांडकर परस्पर गुणा करने से राजू होता है और उतनी ही जगह दो दो बार दो लिखकर *(चार लिखकर)* परस्पर गुणा करनेपर राजू का वर्ग होता है । सो जगत्प्रतर को दो बार सात का भाग देनेपर इतना होता है । *(एक राजू=७राजू÷७=जगत्श्रेणी÷७। राजू वर्ग=जगत्प्रतर÷४९)* । पुनश्च इसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक कम गुणकार का प्रमाण पंद्रह, उसका भाग दीजिये । पुनश्च यहां आदि में पुष्करसमुद्र है उसमें लवणसमुद्र समान खण्डों का प्रमाण दो को दो बार सोलह से गुणिये उतना है, वही मुख हुआ, इससे पूर्वोक्त

प्रमाण को गुणा करते हैं, ऐसे करनेपर एक कम जगत्प्रतर को दो, सोलह, सोलह का गुणकार और सात, सात, पंद्रह का भागहार हुआ । एक लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्ड होते हैं इसलिये इस राशि को चौबीस का गुणकार करना । पुनश्च जम्बूद्वीप में सूक्ष्म क्षेत्रफल सात, नौ आदि अंकमात्र है । इसलिये उसका गुणकार करना । पुनश्च एक योजन के सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं । यहां वर्गराशि का ग्रहण है और वर्गराशि का गुणकार भागहार वर्गराशिरूप ही होता है । इसलिये दो बार सात लाख अड़सठ हजार का गुणकार जानना । पुनश्च एक सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होता है, इसलिये इतने प्रतरांगुलों का गुणकार जानना । पुनश्च –

**विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।**
**तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।।**

इस करणसूत्र के अभिप्राय से द्वीप समुद्रों के प्रमाण में से राजू के अर्धच्छेदों में से जितने अर्धच्छेद घटाये हैं, उनके आधे प्रमाण मात्र गुणकार सोलह को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने का पूर्वोक्त राशि में भागहार जानना । सो यहां जिसका आधा ग्रहण किया उस सम्पूर्ण राशिमात्र सोलह का वर्गमूल चार, उनको परस्पर गुणा करनेपर वही राशि होती है । सो अपने अर्धच्छेद मात्र दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर विवक्षित राशि होती है और यहां चार कहे हैं इसलिये उतने ही मात्र दो बार दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर विवक्षित राशि का वर्ग होता है । इसलिये यहां लाख योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दो बार दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर लाख का वर्ग आया । एक योजन के अंगुलों के प्रमाण के अर्धच्छेद मात्र दो बार दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर एक योजन के अंगुल सात लाख अड़सठ हजार उनका वर्ग हुआ । पुनश्च मेरुमध्य संबंधी एक अर्धच्छेद संबंधी दो बार दो को परस्पर गुणा करनेपर चार आये । पुनश्च सूच्यंगुल के अर्धच्छेद मात्र दो बार दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर प्रतरांगुल हुआ । ऐसे ये भागहार जानने ।

पुनश्च जलचर सहित तीन समुद्र गच्छ में से घटाये हैं, इसलिये तीन बार गुणोत्तर सोलह का भागहार जानना । इसतरह जगत्प्रतर को प्रतरांगुल और दो, सोलह, सोलह, चौबीस और सात सौ नब्बे कोडि छप्पन लाख चौरानबे हजार एक सौ पचास और सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अड़सठ हजार का तो गुणकार हुआ ।

पुनश्च प्रतरांगुल, सात, सात, पंद्रह, एक लाख, एक लाख, सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार और चार और सोलह, सोलह, सोलह का भागहार हुआ। यहां प्रतरांगुल और दो बार सोलह तथा दो बार सात लाख अड़सठ हजार गुणकार भागहार में समान देखकर अपवर्तन करके और गुणकार में दो और चौबीस को परस्पर गुणा करनेपर अड़तालीस और भागहार में पंद्रह, सोलह को परस्पर गुणा करनेपर दो सौ चालीस उनको अड़तालीस से अपवर्तन करनेपर भागहार में पांच रहे ऐसे अपवर्तन करनेपर जो अवशेष प्रमाण रहा ७९०५६९४१५०÷(७×७×१ल×१ल×४×५) वहां सर्व भागहारों को परस्पर गुणा करके उसको गुणकार के अंकों का भाग देनेपर कुछ अधिक बारह सौ उनतालीस हुये । इसतरह धनराशि में सर्व क्षेत्रफल साधिक **धगरय** अर्थात् बारह सौ उनतालीस से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल आया । यहां **कटपयपुरस्थवर्णैः** इत्यादि सूत्र के अनुसार अक्षर संज्ञा द्वारा **धगरय** शब्द से नौ, तीन, दो, एक जनित प्रमाण ग्रहण करना ।

अब यहां एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण कहा था, सो जलचर रहित समुद्रों में ऋणरूप क्षेत्रफल निकालते हैं । **'पदमेत्ते गुणयारे'** इत्यादि करणसूत्र से प्रथम गच्छमात्र गुणकार चार का परस्पर गुणा करना । वहां राजू के अर्धच्छेद के प्रमाण के अर्धप्रमाण मात्र चार को परस्पर गुणा करने से एक राजू होता है । कैसे ? वह कहते हैं –

सर्व द्वीप समुद्र के प्रमाणमात्र गच्छ समझकर यहां आधाप्रमाण है इसलिये गुणकार चार का वर्गमूल दो ग्रहण करना । सो सम्पूर्ण गच्छ में एक राजू के अर्धच्छेद कहे हैं इसलिये एक राजू के अर्धच्छेद प्रमाण दो को परस्पर गुणा करनेपर एक राजू प्रमाण आया, वह जगत्श्रेणी के सातवें भागमात्र है । इसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक कम गुणकार तीन का भाग दीजिये । पुनश्च पुष्करसमुद्र अपेक्षा आदि स्थान में प्रमाण सोलह उससे गुणा करना । इसतरह एक कम जगत्श्रेणी को सोलह का गुणकार तथा सात और तीन का भागहार हुआ । इसको पूर्वोक्त प्रकार चौबीस खण्ड और जम्बूद्वीप के क्षेत्रफलरूप योजनों के प्रमाण से और एक योजन के अंगुलों के वर्गमात्र प्रतरांगुलों से गुणा करना क्योंकि यहां सूच्यंगुलों का वर्ग है । *(ये सर्व गणित अर्थसंदृष्टि में सहनानी अर्थात् चिह्नों द्वारा करके बतायी हैं वहां से जानना सुगम होता है । गणित के रुचिवानों को वहां से जानना इष्ट है ।)* पुनश्च –

**विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।**
**तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।।१।।**

इस सूत्र के अनुसार जितने गच्छ में राजू के अर्धच्छेद प्रमाण घटाते हैं उसका जो आधा प्रमाण है उतने चार के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतने का भागहार जानना । सो जिस राशि का आधा प्रमाण लिया उस राशिमात्र चार के वर्गमूल दो को परस्पर गुणा करना, वहां लाख योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर एक लाख हुये; एक योजन के अंगुलों के अर्धच्छेदप्रमाण दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं; तथा मेरुमध्य के अर्धच्छेद मात्र दो के दो हुये । तथा सूच्यंगुल के अर्धच्छेद मात्र दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर सूच्यंगुल हुआ । ऐसे ये भागहार हुये । पुनश्च तीन समुद्र घटायें है इसलिये तीन बार गुणोत्तर चार का भागहार जानना ।

इसप्रकार एक कम जगत्श्रेणी को सोलह, चार, चौबीस, सात सौ नब्बे कोडि छप्पन लाख चौरानबे हजार एक सौ पचास, सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अड़सठ हजार का तो गुणकार हुआ । तथा सात, तीन, सूच्यंगुल, एक लाख, सात लाख अड़सठ हजार, दो, चार, चार और चार का भागहार हुआ । वहां यथायोग्य अपवर्तन करनेपर संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्श्रेणीमात्र क्षेत्रफल हुआ ।

सो इतने पूर्वोक्त धनराशिरूप क्षेत्रफल में से घटाना । सो उस महत् राशि में से किंचित् मात्र घटा, उसे घटानेपर किंचित् न्यून साधिक बारह सौ उनतालीस से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण जलचर रहित सर्व समुद्रों का क्षेत्रफल ऋणरूप सिद्ध हुआ। इसको एक राजू लम्बे, चौड़े ऐसे जगत्प्रतर के उनचासवें भागमात्र राजूप्रतर क्षेत्र $(\text{१राजू} \times \text{१राजू} = \frac{\text{ज.श्रेणी}}{\text{७}} \times \frac{\text{ज.श्रेणी}}{\text{७}} = \frac{\text{ज.प्रतर}}{\text{४९}})$ में से समच्छेद करके घटाते हैं तब जगत्प्रतर को ग्यारह सौ नब्बे का गुणकार और उनचास गुणा बारह सौ उनतालीस का भागहार हुआ । वहां अपवर्तन करने के लिये भाज्य के गुणकार का भागहार को भाग देनेपर कुछ अधिक इक्कावन आये । ऐसे साधिक **काम** अर्थात् अक्षरसंज्ञा द्वारा इक्कावन उससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्र के प्रतररूप तन का स्पर्श हुआ । इसको ऊंचाई के स्पर्श के ग्रहण के लिये जीवों की ऊंचाई का प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल, उससे गुणित करनेपर साधिक इक्कावन से भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणा

जगत्प्रतरमात्र शुभ लेश्याओं का स्वस्थानस्वस्थान में स्पर्श होता है ।

इसको देखकर पीतलेश्या का स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागमात्र कहा, क्योंकि यह क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागमात्र है । पुनश्च पीतलेश्या का विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात में स्पर्श कुछ कम चौदह भाग में आठ भागप्रमाण है । किस कारण ? वह कहते हैं–

लोक चौदह राजू ऊंचा है । त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लम्बा, चौड़ा है । वहां चौदह राजू में सनत्कुमार–माहेन्द्र के वासी उत्कृष्ट पीतलेश्यावाले देव ऊपर अच्युत यानि सोलहवें स्वर्ग तक गमन करते हैं और नीचे तीसरी नरक पृथ्वी तक गमन करते हैं । सो अच्युत स्वर्ग से तीसरा नरक आठ राजू है, इसलिये चौदह भाग में आठ भाग कहे । तथा उसमें से उस तीसरे नरक की पृथ्वी की मोटाई में जहां पटल नहीं पाये जाते ऐसे हजार योजन घटाना, इसलिये किंचित् ऊन *(कुछ कम)* कहा । यहां यदि चौदह घनरूप राजू की एक शलाका होती है तो आठ घनरूप राजू की कितनी शलाका होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर आठ चौदहवां भाग *(आठ चौदहांश)* आते हैं । अथवा भवनत्रिक देव ऊपर और नीचे स्वयमेव तो सौधर्म–ईशान स्वर्ग तक और तीसरे नरक तक गमन करते हैं और अन्य देव ले जायेंगे तो सोलहवें स्वर्ग तक विहार करते हैं । इसलिये भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श होता है ।

पुनश्च पीतलेश्या का मारणांतिक समुद्घात में स्पर्श चौदह भाग में नौ भाग कुछ कम होता है । किस कारण ? भवनत्रिक देव या सौधर्मादिक चार स्वर्ग के वासी देव तीसरे नरक गये और वहां ही मारणांतिक समुद्घात किया, वे जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वी *(ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी जिसके बीचोंबीच सिद्धशिला पायी जाती है)* में बादर पृथ्वीकाय होकर उपजते हैं इसलिये वहां तक मरण समुद्घातरूप प्रदेशों का विस्तार करके दंड किया । उस आठवीं पृथ्वी से तीसरा नरक नौ राजू है तथा वहां पटल रहित पृथ्वी की मोटाई घटानी, इसलिये किंचित् कम नौ चौदहवां भाग होता है ।

पुनश्च तेजस समुद्घात और आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना क्योंकि यह मनुष्य लोक में ही होते हैं । पुनश्च केवली समुद्घात इस लेश्या के होता ही नहीं है । पुनश्च उपपाद में स्पर्श चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ राजू

भाग मात्र जानना । सो मध्यलोक से पीतलेश्या से मरकर सौधर्म ईशान के अंतिम पटल में उपजते हैं उनकी अपेक्षा है ।

**यहां कोई कहेगा** कि पीतलेश्या के उपपाद में सनत्कुमार-माहेन्द्र तक क्षेत्र देव का स्पर्श पाया जाता है, वह तीन राजू ऊंचा है, इसलिये चौदह भागों में किंचित् कम तीन भाग क्यों न कहे ?

**उसका समाधान** - सौधर्म-ईशान के ऊपर संख्यात योजन जाकर सनत्कुमार-माहेन्द्र का प्रारंभ होता है वहां प्रथम पटल है और डेढ़ राजू जानेपर अंतिम पटल है । अंतिम पटल में पीतलेश्या नहीं है ऐसा कितने ही आचार्यों का उपदेश है । इसलिये, अथवा चित्राभूमि पर रहनेवाले तिर्यंच और मनुष्य का उपपाद ईशान तक ही होता है, इसलिये किंचित् ऊन डेढ़ भागमात्र ही स्पर्श कहा है । पुनश्च गाथा में चकार कहा है इसलिये पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से मरनेवाले के सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम चक्र नामक इन्द्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों में उत्पत्ति कई आचार्य कहते हैं । उनके अभिप्राय से यथासंभव तीन भाग मात्र भी स्पर्शन होता है । कुछ नियम नहीं है । इसीलिये सूत्र में चकार कहा । इसतरह पीतलेश्या में स्पर्श कहा ।

**पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।**
**अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ।।५४८।।**

**पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदम् ।**
**अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ।।५४८।।**

**टीका** - पद्मलेश्या के स्वस्थानस्वस्थान मे पूर्वोक्त प्रकार लोक के असंख्यातवें भागमात्र स्पर्श जानना । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घात में किंचित् कम चौदह भाग में से आठ भागमात्र स्पर्श जानना । पुनश्च मारणांतिक समुद्घात में भी वैसे ही किंचित् कम आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना । क्योंकि पद्मलेश्यावाले देव पृथ्वी, अप्, वनस्पति में नहीं उपजते । पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च केवली समुद्घात इस लेश्या में नहीं है ।

**उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं च देसूणं ।**

**उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः ।**

**टीका** – यह आधा सूत्र है । उपपाद में स्पर्श चौदह भागों में पांच भाग कुछ कम जानना क्योंकि पद्मलेश्या शतार-सहस्रार तक होती है । और शतार-सहस्रार मध्यलोक से पांच राजू ऊंचा है । इसतरह पद्मलेश्या में स्पर्श कहा ।

**सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोदसा हीणा ।।५४९।।**

**शुक्लायाश्च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ।।५४९।।**

**टीका** – शुक्ललेश्यावाले जीवों के स्वस्थानस्वस्थान में पीतलेश्यावत् लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श है । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान में और वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक समुद्घातों में स्पर्श चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग जानना। क्योंकि अच्युत स्वर्ग के ऊपर के देवों का स्वस्थान छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं है। इसलिये अच्युत तक ही ग्रहण किया । पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना ।

**णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा ।**
**सव्वो वा खलु लोगो फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ।।५५०।।**

**नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा ।**
**सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ।।५५०।।**

**टीका** – केवली समुद्घात में विशेष है, वह क्या है ?

दंड में तो स्पर्श का प्रमाण क्षेत्र के समान संख्यात प्रतरांगुलों से गुणित जगत्श्रेणीप्रमाण, वह फैलने और समेटने की अपेक्षा दुगुणा जानना । पुनश्च पूर्वाभिमुख स्थित या उपविष्टकपाट में संख्यात सूच्यंगुल मात्र जगत्प्रतरप्रमाण है, सो फैलने, समेटने की अपेक्षा दुगुणा स्पर्श जानना । वैसे ही उत्तराभिमुखस्थित या उपविष्टकपाट में स्पर्श जानना । पुनश्च प्रतर समुद्घात में लोक को असंख्यात का भाग दीजिये, उसमें एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र स्पर्श है । क्योंकि वातवलय का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है, वहां व्याप्त नहीं होता । पुनश्च लोकपूरण में स्पर्श सर्व लोक जानना, ऐसा नियम है ।

पुनश्च उपपाद में चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग स्पर्श जानना क्योंकि यहां आरण-अच्युत *(पंद्रहवां-सोलहवां)* तक की ही विवक्षा है । इति स्पर्शाधिकारः (स्पर्श अधिकार समाप्त हुआ ।)

***१३) काल अधिकार*** – आगे काल अधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं–

**कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।**
**अंतोमुहुत्तमवरं एगं जीवं पडुच्च हवे ।।५५१।।**

**कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्वाद्धा ।**
**अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं जीवं प्रतीत्य भवेत् ।।५५१।।**

**टीका** – कृष्ण आदि छहों लेश्याओं का काल नाना जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा अर्थात् सर्वकाल है । पुनश्च एक जीव की अपेक्षा छहों लेश्याओं का जघन्य काल तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण जानना ।

**उवहीणं तेत्तीसं सत्तरसत्तेव होंति दो चेव ।**
**अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया ।।५५२।।**

**उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव ।**
**अष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंति अतिरेकाः ।।५५२।।**

**टीका** – कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट काल तैंतीस सागर, नीललेश्या का सत्रह सागर, कपोतलेश्या का सात सागर, पीतलेश्या का दो सागर, पद्मलेश्या का काल अठारह सागर, शुक्ललेश्या का तैंतीस सागर कुछ कुछ अधिक जानना । सो अधिक का प्रमाण कितना ? वह कहते हैं – यह उत्कृष्ट काल नारक और देवों की अपेक्षा से कहा है । सो नारकी और देव जिस पर्याय से आकर उपजते हैं उस पर्याय का अंतिम अंतर्मुहूर्त काल तथा देव, नारक पर्याय छोड़कर जहां उपजते हैं वहां आदि में अंतर्मुहूर्त काल मात्र वही लेश्या होती है । इसलिये पूर्वोक्त काल से छहों लेश्याओं के काल में दो दो अंतर्मुहूर्त अधिक जानना । पुनश्च पीतलेश्या और पद्मलेश्या के काल में किंचित् कम आधा सागर भी अधिक जानना, क्योंकि जिसके आयु का अपवर्तनघात हुआ है ऐसा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टि, उसके अंतर्मुहूर्त कम आधा सागर आयु अधिक होती है । जैसे सौधर्म-ईशान में दो सागर की आयु कही है, वहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टि के अंतर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागर भी आयु होती है, ऐसे ऊपर भी जानना । पुनश्च इसीतरह मिथ्यादृष्टि घातायुष्क के पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयु अधिक होती है । सो यह अधिकपना सौधर्म से लेकर सहस्रार तक जानना । ऊपर घातायुष्क

का उपजना नहीं होता, इसलिये वहां जो आयु का प्रमाण कहा है, उतना ही होता है । ऐसे अधिक काल का प्रमाण जानना । इति कालाधिकारः (काल अधिकार समाप्त हुआ ।)

*१४) अंतर अधिकार* – आगे अंतर अधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं–

**अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।**
**उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।।५५३।।**

**तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।**
**पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ।।५५४।।**

**अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।**
**उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टम् ।।५५३।।**

**तेजस्त्रयाणामेवं नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।**
**पुद्गलपरिवर्ता हि असंख्येया भवंति नियमेन ।।५५४।।**

**टीका** – अंतर का अर्थ होता है विरहकाल । जैसे कोई जीव कृष्णलेश्या में प्रवर्तता था, पश्चात् कृष्ण को छोड़कर अन्य लेश्या को प्राप्त हुआ । सो जितने काल तक फिर उस कृष्णलेश्या को प्राप्त नहीं होता उस काल को कृष्णलेश्या का अंतर कहते हैं । ऐसे ही सर्वत्र जानना । कृष्णादि तीन लेश्याओं में जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट कुछ अधिक तैंतीस सागर प्रमाण है ।

वहां कृष्णलेश्या में अंतर कहते हैं –

कोई जीव कोडिपूर्व वर्षमात्र आयु का धारक मनुष्य गर्भ से लेकर आठ वर्ष होने में छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहे वहां कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ, वहां अंतर्मुहूर्त रहकर, नीललेश्या को प्राप्त हुआ । तब कृष्णलेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां एक-एक अंतर्मुहूर्तमात्र अनुक्रम से नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर आठ वर्ष के अंत के समय दीक्षा धारण कर वहां कुछ कम कोडिपूर्व तक संयम का पालन कर शुक्ललेश्या सहित सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुआ । वहां तैंतीस सागर पूर्ण करके मनुष्य होकर अंतर्मुहूर्त तक शुक्ललेश्यारूप रहा । पश्चात् अनुक्रम

से एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म, पीत, कपोत, नीललेश्या को प्राप्त होकर कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ । ऐसे जीव के कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट अंतर दस अंतर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम कोडिपूर्व से अधिक तैंतीस सागर प्रमाण जानना । ऐसे ही नीललेश्या और कपोतलेश्या में उत्कृष्ट अंतर जानना । विशेष इतना है कि वहां दस अंतर्मुहूर्त कहे हैं, नील में आठ और कपोत में छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने ।

अब पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं –

कोई जीव मनुष्य या तिर्यंच में पीतलेश्या में था, वहां से कपोतलेश्या को प्राप्त हुआ तब पीतलेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां एक-एक अंतर्मुहूर्त तक कपोत, नील, कृष्ण लेश्या को प्राप्त होकर एकेन्द्रिय हुआ । वहां उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलद्रव्यपरिवर्तन का जितना काल है उतने काल तक भ्रमण किया, पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां उत्कृष्टपने संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल तक भ्रमण किया, पश्चात् पंचेन्द्रिय हुआ। वहां प्रथम समय से लेकर एक-एक अंतर्मुहूर्त काल में अनुक्रम से कृष्ण, नील, कपोत को प्राप्त होकर पीतलेश्या को प्राप्त हुआ। ऐसे जीव के पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंतर छह अंतर्मुहूर्त सहित और संख्यात सहस्र वर्षों से अधिक आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनमात्र जानना।

अब पद्मलेश्या का अंतर कहते हैं –

कोई जीव पद्मलेश्या में था, उसको छोड़कर पीतलेश्या को प्राप्त हुआ तब पद्म के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां पीतलेश्या में अंतर्मुहूर्त तक रहकर सौधर्म-ईशान में उत्पन्न हुआ । वहां पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर पर्यंत रहा । वहां से चयकर एकेन्द्रिय हुआ । वहां आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनकालमात्र भ्रमण करके पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करके पंचेन्द्रिय हुआ । वहां प्रथम समय से लेकर एक-एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण, नील, कपोत, पीतलेश्या को प्राप्त होकर पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ। ऐसे जीव के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अंतर पांच अंतर्मुहूर्त और पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर और संख्यात हजार वर्ष इनसे अधिक आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन मात्र जानना ।

आगे शुक्ललेश्या का अंतर कहते हैं –

कोई जीव शुक्ललेश्या में था, वहां से पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ, तब शुक्ललेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां क्रम से एक-एक अंतर्मुहूर्त कालमात्र पद्म, पीतलेश्या को प्राप्त होकर सौधर्म-ईशान में उपजकर वहां पूर्वोक्त प्रमाण काल तक रहकर पश्चात् एकेन्द्रिय हुआ । वहां भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमण करके पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करके पंचेन्द्रिय होकर प्रथम समय से एक-एक अंतर्मुहूर्त कालमात्र क्रम से कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्या को प्राप्त होकर शुक्ललेश्या को प्राप्त हुआ । ऐसे जीव के सात अंतर्मुहूर्त और संख्यात सहस्र वर्ष और पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर से अधिक आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तन मात्र शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंतर जानना। इति अंतराधिकारः (अंतर अधिकार समाप्त हुआ ।)

***१५) भाव अधिकार १६) अल्पबहुत्व अधिकार –*** आगे भाव और अल्पबहुत्व अधिकारों को कहते हैं –

**भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।**
**दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ।।५५५।।**

**भावतः षड् लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।**
**द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति लेश्या वर्णिता भवंति ।।५५५।।**

**टीका** – भाव से छहों लेश्या औदयिक भावरूप जाननी क्योंकि कषायसंयुक्त योगों की प्रवृत्ति का नाम लेश्या है । वे दोनों कर्म के उदय से होते हैं । इति भावाधिकारः (भाव अधिकार समाप्त हुआ ।)

पुनश्च इन लेश्याओं का अल्पबहुत्व पहले संख्या अधिकार में द्रव्यप्रमाण से ही सिद्ध है । जिनका प्रमाण थोड़ा है वे अल्प, जिनका प्रमाण अधिक है वे बहुत। वहां सब से थोड़े शुक्ललेश्यावाले जीव हैं, फिर भी असंख्यात हैं । उनसे असंख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव हैं । उनसे संख्यातगुणे पीतलेश्यावाले जीव हैं । उनसे अनंतानंतगुणे कपोतलेश्यावाले जीव हैं । उनसे कुछ अधिक नीललेश्यावाले जीव हैं । उनसे कुछ अधिक कृष्णलेश्यावाले जीव हैं । इति अल्पबहुत्वाधिकारः (अल्पबहुत्व अधिकार समाप्त हुआ ।)

इसतरह सोलह अधिकारों द्वारा वर्णन की हुयी छहों लेश्या जाननी ।

आगे लेश्या रहित जीवों को कहते हैं -

**किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणग्गया अणंतसुहा ।**
**सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ।।५५६।।**

**कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।**
**सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ।।५५६।।**

**टीका** - जो जीव कषायों के उदयस्थानों से युक्त योगों की प्रवृत्ति के अभाव से कृष्णादि लेश्याओं से रहित हैं, उसीसे पांच प्रकार के संसारसमुद्र से निकलकर पार हुये हैं । पुनश्च अतीन्द्रिय-अनंत सुख से तृप्त हैं । पुनश्च आत्मा की उपलब्धि है लक्षण जिसका ऐसी सिद्धपुरी को सम्यक्पने से प्राप्त हुये हैं वे अयोगकेवली और सिद्धभगवान लेश्यारहित अलेश्य जानने ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ
की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-
टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से लेश्यामार्गणा
प्ररूपणा नामक पंद्रहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१५।।

# सोलहवां अधिकार : भव्यमार्गणा प्ररूपणा

**।। मंगलाचरण ।।**

**इष्ट फलत सब होत फुनि नष्ट अनिष्ट समाज ।**
**जास नामतैं सो भजौ शांति नाथ जिनराज ।।**

आगे भव्यमार्गणा का अधिकार चार गाथाओं द्वारा कहते हैं –

**भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।**
**तव्विवरियाऽभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ।।५५७।।**

**भव्या सिद्धिर्येषां जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।**
**तद्विपरीता अभव्याः संसारान्न सिद्ध्यन्ति ।।५५७।।**

**टीका – भव्याः** अर्थात् होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि अर्थात् अनंत चतुष्टयरूप स्वरूप की प्राप्ति जिनके, वे भव्यसिद्ध जानने । इसके द्वारा सिद्धि की प्राप्ति और योग्यता से भव्यों के द्विविधपना कहा है ।

**भावार्थ –** भव्य दो प्रकार के हैं । कितने तो भव्य ऐसे हैं जो मुक्ति होने के केवल योग्य ही हैं परंतु कभी भी सामग्री को पाकर मुक्त नहीं होंगे । तथा कितने ही भव्य ऐसे हैं, जो काल पाकर मुक्त होंगे । पुनश्च **तद्विपरीताः** अर्थात् पूर्वोक्त दोनों लक्षणों से रहित जो जीव मुक्त होने योग्य भी नहीं हैं और मुक्त भी होते नहीं, वे अभव्य जानने । क्योंकि वे अभव्य जीव संसार से छूटकर कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होते, ऐसा ही कोई द्रव्यत्व भाव है ।

यहां कोई भ्रम करेगा कि अभव्य यदि मुक्त नहीं होते तो दोनों प्रकार के भव्यों को तो मुक्त होना ठहरा । इसलिये जो मुक्त होने योग्य कहे थे, उन भव्यों के भी कभी तो मुक्ति प्राप्त होगी ऐसे भ्रम को दूर करते हैं –

**भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।**
**ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ।।५५८।।**

**भव्यत्वस्य योग्या ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।**
**न हि मलविगमे नियमात् तेषां कनकोपलानामिव ।।५५८।।**

**टीका –** जो जीव भव्यत्व अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक सामग्री को पाकर अनंतचतुष्टयरूप होना, उसके केवल योग्य ही हैं, तद्रूप होने के नहीं हैं, वे भव्यसिद्धिक सदाकाल संसार को प्राप्त रहते हैं । किस कारण ? वह कहते हैं – जैसे कई सुवर्ण सहित पाषाण ऐसे होते हैं उनके कभी भी मैल के नाश करने की सामग्री नहीं मिलती, वैसे कई भव्य ऐसे हैं जिनके कभी भी कर्ममल नाश करने की सामग्री नियम से नहीं होती हैं ।

**भावार्थ –** जैसे अहमिन्द्र देवों के नरकादि में गमन करने की शक्ति है परंतु कभी भी गमन नहीं करते, वैसे कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मुक्त होने के योग्य हैं, परंतु कभी भी मुक्त नहीं होंगे ।

**ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तीसुहातीदणंतसंसारा ।**
**ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ।।५५९।।**

**न च ये भव्या अभव्या मुक्तिसुखा अतीतानंतसंसारा ।**
**ते जीवा ज्ञातव्या नैव च भव्या अभव्याश्च ।।५५९।।**

**टीका –** जो जीव कुछ नवीन ज्ञानादिक अवस्था को प्राप्त होनेवाले नहीं इसलिये भव्य भी नहीं हैं और अनंतचतुष्टयरूप हुये हैं इसलिये अभव्य भी नहीं हैं, ऐसे मुक्ति सुख के भोक्ता अनंत संसार से रहित हुये वे जीव भव्य भी नहीं, अभव्य भी नहीं हैं, जीवत्व पारिणामिक के धारक हैं; ऐसे जानने ।

यहां जीवों की संख्या कहते हैं –

**अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।**
**तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ।।५६०।।**

**अवरो युक्तानन्तः अभव्यराशेर्भवति परिमाणम् ।**
**तेन विहीनः सर्वः संसारी भव्यराशेः ।।५६०।।**

**टीका –** अभव्यराशि का प्रमाण जघन्य युक्तानंत प्रमाण है । तथा संसारी

जीवों के प्रमाण में से अभव्यराशि का प्रमाण घटानेपर अवशेष रहे उतना भव्यराशि का प्रमाण है । यहां संसारी जीवों के परिवर्तन (परावर्तन) कहते हैं – परिवर्तन, परिभ्रमण, संसार ये एकार्थवाची हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव से परिवर्तन पांच प्रकार का है । वहां द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकार का है – एक कर्मद्रव्यपरिवर्तन, एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन ।

वहां **नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन** कहते हैं –

किसी जीव ने औदारिकादि तीन शरीरों में से किसी भी शरीर संबंधी छह पर्याप्तिरूप परिणमने के योग्य पुद्‌गल किसी एक समय में ग्रहण किये, वे स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि से तीव्र, मंद, मध्य भावयुक्त यथासंभव ग्रहण किये । पुनश्च वे द्वितीयादि समयों में निर्जरारूप किये । अनंत बार अगृहीतों को ग्रहण करके छोड़े, अनंत बार मिश्रों को ग्रहण करके छोड़े, बीच में गृहीतों को अनंत बार ग्रहण करके छोड़े, ऐसे होनेपर पश्चात् जो पहले समय पुद्‌गल ग्रहण किये वे ही पुद्‌गल वैसे ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि से उसी जीव के नोकर्मभाव को प्राप्त होते हैं, उतने काल के समुदायरूप नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन है । जीव द्वारा पहले ग्रहण किये हुये ऐसे परमाणु जिन समयप्रबद्धरूप स्कंधों में होते हैं, उन्हें गृहीत कहते हैं । पुनश्च जीव द्वारा पहले ग्रहण नहीं किये हुये परमाणु जिनमें होते हैं, उन्हें अगृहीत कहते हैं । गृहीत और अगृहीत दोनों जाति के परमाणु जिनमें हो, उन्हें मिश्र कहते हैं ।

यहां कोई कहे कि अगृहीत परमाणु कैसे हैं ?

**उसका समाधान** – सर्व जीवराशि के प्रमाण को समयप्रबद्ध के परमाणुओं के प्रमाण से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उसको अतीत काल के समयों के प्रमाण से गुणित करनेपर जो प्रमाण आता है, उससे भी पुद्‌गल द्रव्य का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि जीवराशि से अनंत वर्गस्थान जानेपर पुद्‌गलराशि होती है । इसलिये अनादिकाल से नाना जीवों की अपेक्षा से भी अगृहीत परमाणु लोक में बहुत पाये जाते हैं । पुनश्च एक जीव के परिवर्तनकाल की अपेक्षा नवीन परिवर्तन प्रारंभ हुआ तब सर्व ही अगृहीत होते हैं, पश्चात् ग्रहण किये वे ही गृहीत होते हैं । सो यहां जिस अपेक्षा से गृहीत, अगृहीत, मिश्र कहे हैं, वह यथासंभव जानना । अब विशेष दिखाते हैं –

पुद्गलपरिवर्तन का काल तीन प्रकार का है । वहां अगृहीत के ग्रहण का काल, वह अगृहीत ग्रहण काल है । गृहीत के ग्रहण का काल, वह गृहीतग्रहण काल है, मिश्र के ग्रहण का काल, वह मिश्रग्रहण काल है । सो इनका परिवर्तन अर्थात् पलटना कैसे होता है ? वह अनुक्रम यंत्र द्वारा दिखाते हैं ।

यंत्र में अगृहीत की सहनानी शून्य(0) जानना और मिश्र की सहनानी हंसपद-अधिकका चिह्न(+) जानना और गृहीत की सहनानी एक का अंक(१) जानना । तथा दो बार लिखने से अनंतबार जान लेना ।

## द्रव्यपरिवर्तन का यंत्र

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 0 0 + | 0 0 + | 0 0 १ | 0 0 + | 0 0 + | 0 0 १ |
| + + 0 | + + 0 | + + १ | + + 0 | + + 0 | + + १ |
| + + १ | + + १ | + + 0 | + + १ | + + १ | + + 0 |
| १ १ + | १ १ + | १ १ 0 | १ १ + | १ १ + | १ १ 0 |

वहां विवक्षित नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के पहले समय से लेकर, प्रथम बार समयप्रबद्ध में अगृहीत का ग्रहण करे, दूसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करे, तीसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करे ऐसे निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण होकर रहे, तब एक बार मिश्र का ग्रहण करे । इसलिये यंत्र में पहले कोठे में दो बार बिंदी, एक बार हंसपद लिखा है ।

उसके पश्चात् उसीप्रकार निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण करके एक बार मिश्र का ग्रहण करे, ऐसे अनुक्रम से अनंत अनंत बार अगृहीत का ग्रहण कर कर के एक-एक बार मिश्र का ग्रहण करे, इसप्रकार मिश्र का भी ग्रहण अनंत बार होता है । इसलिये अनंत बार की सहनानी के लिये यंत्र में जैसा पहला कोठा था वैसा ही दूसरा कोठा लिखा है ।

उसके पश्चात् उसीप्रकार निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है, इसीलिये तीसरे कोठे में दो शून्य और एक का अंक लिखा है । पुनश्च अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रम से जैसे यह एक बार गृहीत ग्रहण हुआ, उसी अनुक्रम से एक-एक बार गृहीत ग्रहण करके अनंत बार गृहीत ग्रहण होता